अंक-14

ISSN 0975-5217

वर्ष 2018

भैरवी

संगीत शोध पत्रिका

मिथिलांचल संगीत परिषद्

स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय

कामेश्वरनगर, दरभंगा (बिहार)

Scanned with OKEN Scanner

भैरवी

(संगीत शोध-पत्रिका)

(वर्ष 2018 अंक 14)

मिथिलांचल संगीत परिषद्

स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित कला संकाय
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर, दरभंगा 846 004

भैरवी (संगीत शोध-पत्रिका)

वर्ष-2018, अंक : 14

प्रधान सम्पादक
प्रो0 (डॉ.) पुष्पम नारायण

प्रकाशक : मिथिलांचल संगीत परिषद्
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर, दरभंगा 846 004
दूरभाष - 06272 248340
मो. - 09430063265
ईमेल - npushpamji@gmail.com

मूल्य
इस अंक का मूल्य : 400/- रुपये

व्यक्तियों के लिए :

वार्षिक : 800/- रुपये / त्रैवार्षिक 2400/- रुपये

पंचवार्षिक 4000/- रुपये / आजीवन : 15000/- रुपये

संस्थाओं के लिए :

वार्षिक : 850/- रुपये / त्रैवार्षिक 2500/- रुपये

पंचवार्षिक 4500/- रुपये / आजीवन : 16000/- रुपये

(केवल मनी आर्डर / चेक / बैक ड्राफ्ट से)
(दरभंगा से बाहर के चेक में 40 रुपये अधिक जोड़ें)

''भैरवी'' विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित है। इसकी **Journal No.** 44277 है।

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु लेखक, प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं के विचार से सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं।
समस्त विवाद दरभंगा न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

प्रधान सम्पादक

प्रो0 (डॉ.) पुष्पम नारायण

प्रोफेसर एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा

सम्पादक मंडल

प्रो. चमनलाल वर्मा

अवकाश प्राप्त विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला

प्रो. साहित्य कुमार नाहर

पूर्व विभागाध्यक्ष, संगीत एवं मंचकला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

डॉ. रामशंकर

प्रवक्ता, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ0 संतोष दत्तात्रयराव परचुरे

प्रवक्ता, संगीत विभाग, एस.पी.एच. महिला महाविद्यालय, मालेगांव कैम्प, महाराष्ट्र

डॉ. अश्विनी कुमार सिंह

प्रवक्ता, संगीत एवं मंचकला विभाग, एम.एस. विश्वविद्यालय, बड़ौदा, गुजरात

प्रो0 (डॉ.) लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'

अध्यक्ष, स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा

डॉ. वेद प्रकाश

स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा

जपात्कोटि गुणं ध्यानं ध्यानात् कोटि गुणं लय।
लयात्कोटि गुणं गानं गानात् परतरं नाहि।।

(जप से करोड़ों गुणा प्रभावी ध्यान है, ध्यान से करोड़ गुणा लयात्मकता प्रभावशाली है। लय प्रधान जप से करोड़ गुणा प्रभाव गान का है और साधना के लिए गान अर्थात् संगीत से उत्तम उपाय अन्य कोई नहीं।)

'Music is the bridge of peace and love'

'संगीत दो देशों के बीच शान्ति और प्रेम का सेतु हैं।'

संपादक की कलम से ...

संगीत शब्द जो हम दैनिक भाषा में प्रयोग करते है वह कुछ कम नहीं, अपितु हमारे प्रियतम (परमात्मा) का स्वरूप है। चूँकि संगीत हमारे प्रियतम का स्वरूप है इसलिए हम संगीत से प्रेम करते हैं। किन्तु प्रश्न यह है कि यह प्रियतम क्या है और कहाँ है? हमारा प्रियतम ही हमारी प्रेरणा का स्त्रोत एवं हमारा उद्देश्य है। स्थूल चक्षुओं से हम जो कुछ भी देखते हैं, वह उसी का सौंदर्य है। प्रियतम का वह पक्ष जो हम स्थूल चक्षुओं द्वारा नहीं देख पाते वह हमारा अंतः सौंदर्य है, जिसके सम्बन्ध में हमारा प्रियतम हमें बतलाता है। यदि हम किसी भी रूप में प्रत्येक पहलू में पाएँगे कि परमात्मा की प्रत्येक अभिव्यक्ति के पीछे पूर्ण दिव्यता एवं दिव्य ज्ञान है।

प्रत्यक्ष दिखने वाले सौंदर्य में जीवन के किस प्रमुख भाव या अभिव्यक्ति को हम देखते हैं? वह है गति। रेखाओं में, रंगों में, ऋतुओं के परिवर्तन में, लहरों के उतार-चढ़ाव में, वायु में, तूफान में, प्रकृति के प्रत्येक सौंदर्य में सदैव गति है। गति से ही दिन-रात होते हैं, ऋतुएँ परिवर्तित होती हैं। इसी गति ने हमें काल या समय का विचार दिया अन्यथा समय नहीं होता, वास्तव में यही शाश्वत है। यह हमें शिक्षा देता है कि जिससे भी हम प्रेम करते है, प्रशंसा करते हैं, निरीक्षण करते हैं, विचार करते हैं यह उसके पीछे छिपा हुआ जीवन ही है और यही जीवन हमारा अस्तित्व है। हमारी सीमाओं के कारण हम ईश्वर की पूर्ण सत्ता को नहीं देख पाते हैं। रंगों में, रेखाओं में, स्वरूप अथवा व्यक्तित्व में जो कुछ भी हम प्रेम करते हैं यह उसी शाश्वत सौंदर्य का है जो हम सबका प्रिय है। सौंदर्य में गत्यात्मकता ही हमें किसी भी स्वरूप में सौंदर्य की ओर आकर्षित करती है। सौंदर्य की यही गति संगीत है। प्रकृति का प्रत्येक आकार उदाहरण के लिए फूलों के आकार की पूर्णता एवं रंग, यह और नक्षत्र, पृथ्वी सभी संगीतात्मकता दर्शाते हैं। पूरी प्रकृति श्वास ले रही है केवल जीवमात्र ही नहीं संपूर्ण प्रकृति। हमारा तुलनात्मक स्वभाव हमें यह भूलने को बाध्य करता है। सब वस्तुएँ एवं संपूर्ण सत्ता एक ही पूर्ण जीवन जी रही है, जीवित सौंदर्य द्वारा प्रदत्त जीवन का चिह्न ही संगीत है।

मेरे लिए स्थापत्य कला संगीत है, बागबानी संगीत है, खेती करना संगीत है, चित्रकला संगीत है और कविता करना संगीत है। जीवन के किसी भी व्यवसाय में जहाँ सौंदर्य-प्रेरणा है, जहाँ दिव्य मंदिर ढ़ाली जा रही है, संगीत है। सब कलाओं में विशेषतया संगीत ही दिव्य मानी गई है। क्योंकि यह ब्रह्माण्ड में लागू होने वाले नियमों का सूक्ष्म रूप है। उदाहरणार्थ यदि हम स्वयं का अध्ययन करें तो यह पाते हैं कि नाड़ी एवं हृदय की धड़कन, श्वास एवं निःश्वास प्रक्रिया यह सब लय का ही कार्य है। जीवन संपूर्ण शरीर के लयात्मक कार्य पर ही निर्भर करता है। श्वास आवाज के रूप में, ध्वनि के रूप में प्रकट होती है। ध्वनि हमेशा बाहर एवं भीतर दोनों रूपों में सुनाई देती हैं, वही संगीत हैं। यह दर्शाता है कि संगीत हमारे बाहर एवं भीतर दोनों जगह है।

संगीत केवल बहुत बड़े संगीतज्ञों की आत्मा को ही प्रेरणा नहीं देता, बल्कि प्रत्येक शिशु जैसे ही इस संसार में आता है अपने हाथ-पैर संगीत की लय में हिलाने-डुलाने लगता है। इसलिए संगीत सौंदर्य की भाषा है ऐसा कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि इसे प्रत्येक प्राणी प्यार करता है। जब व्यक्ति यह अनुभव कर लेता है और पहचान लेता है कि सौंदर्य की पूर्णता ही परमात्मा है, हमारा प्रियतम

है तब हमें समझ में आता है कि कला और ब्रह्माण्ड में जो हम संगीत की अनुभूति करते हैं, वह क्यों दिव्य कला कहलाता है।

कई लोग संसार में संगीत को मनोरंजन मानते हैं, समय बिताने का साधन समझते हैं और कई लोगों के लिए संगीत मात्र एक कला है और संगीतज्ञ मनोरंजन करने वाला। फिर भी ऐसा कोई नहीं है जिसने संगीत को सर्वाधिक पवित्र कला नहीं माना है। क्योंकि वास्तविकता यह है कि जो चित्रकला सुझा नहीं सकती, जो कविता शब्दों में प्रकट नहीं कर सकती और कवि भी कविता के द्वारा व्यक्त करने में असमर्थ है वह संगीत के द्वारा व्यक्त हो सकता है। इन शब्दों द्वारा केवल मैं यही नहीं कहती हूँ कि संगीत चित्रकला एवं काव्य कला से बेहतर है पर सत्य यह है कि संगीत धर्म से भी ऊपर है, क्योंकि संगीत मनुष्य की आत्मा को धर्म के बाह्य रूपों से ऊपर उठाता है।

संगीत के दिव्य संसार में गोते लगाना अपने आप में जीवन की सार्थकता है। संगीत के असीमित गुण हैं। हमे गोता लगाने की आवश्यकता है। ''भैरवी'' संगीत शोध पत्रिका अपने चौदहवें सोपान की ओर अग्रसर होकर अब आपके हाथ में है। आप सभी सुधी पाठकों की शुभकामना से इसकी निरन्तरता बनी है। प्रुफ रीडिंग का कार्य अत्यन्त ही दुरूह है। तकनीकि एवं यांत्रिक त्रुटि हेतु क्षमा प्रार्थी हूँ। आशा है यह अंक सुधि पाठकों, शोध-छात्रों एवं संगीत प्रेमियों के लिए लाभकारी होगा।

—प्रो. (डॉ.) पुष्पम नारायण
संपादक
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर, दरभंगा 846004
मो. - 09430063265
ईमेल - npushpamji@gmail.com

अनुक्रम

	संपादक की कलम से ...		9
1.	संगीत का व्यवसायिक प्रयोग	प्रो. पुष्पम नारायण	11
2.	हिन्दुस्तानी संगीत के स्तम्भ ''घराने''	अयना बोस	16
3.	तत्वज्ञों का संगीत - अंतःस्थ संगीत	अणिमा श्रीवास्तव	18
4.	''शास्त्रीय संगीत में बदलाव लाने के लिये दृश्य श्रव्य माध्यमों का योगदान''	अरूण कुमार	19
5.	हिमाचली समतल क्षेत्र के लोक संगीत में भाव रूप	ऋचु कालिया	21
6.	संगीत शिक्षण में दूरवर्ती शिक्षा की संभावनायें	डॉ0 अंजू कुमारी	25
7.	महाविद्यालय में संगीत के घराने का अस्तित्व	डॉ0 किरण सिंह	28
8.	संगीत, धर्म और साहित्य का परस्पर अन्तर्सम्बन्ध	डॉ0 राजेश शर्मा	29
9.	पंजाबी गायकी के सरताज और स्वर के धनी सरदूल सिकंदर के चरित्र और गायकी के विशेष पक्ष	डॉ. श्रुति होड़ा	45
10.	संगीत चिकित्सा के प्रति उभरता झुकाव	डॉ. ममता रानी ठाकुर	48
11.	संगीत एक विद्या एवं उसकी अवधारणा	शकुन्तला कुमारी	53
12.	संगीत की उत्पत्ति एवं विकास	ममता कुमारी	56
13.	मध्यकालीन संगीत साहित्य में सूफियों का सिद्धान्त	डॉ0 रश्मि पुरियार	60
14.	कवि जयदेव और विद्यापति द्वारा वर्णित राधा-कृष्ण	डॉली भारती	63
15.	विभिन्न जातियों के संस्कारों में प्रचलित संस्कार गीत (अंग प्रदेश के संदर्भ में)	सुप्रिया कुमारी	66
16.	हिन्दी के गीति नाट्य : परंपरा एवं प्रयोग	संगीत कुमार झा	69
17.	तंत्रवाद्य सितार	डॉ0 गुलशन ग्रोवर	74
18.	भारतीय उपशास्त्रीय संगीत की लोकप्रिय गायन शैली - ठुमरी में सौंदर्य तत्व	अमृता दत्ता	80
19.	''लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत के तत्व''	सुरेखा रानी	86
10.	अमीर खुसरोः बहुआयामी व्यक्तित्व	...	88
11.	संगीत और मनोविज्ञान	रामचन्द्र पासवान	94
12.	KALBELIA- The snake charmer's dance		96
13.	Health Benefits of yoga with music	Mrs. Ravneet Kapoor	100
14.	MUSIC and WELLNESS	Niti Anand	105
15.	Inter Relationship: Music & Mathematics	Dr. Gaveesh	110
16.	Need and importance Music Education: An overview	Sudha Sharma	113

संगीत का व्यवसायिक प्रयोग

प्रो. पुष्पम नारायण

आधुनिक युग विशिष्टिकरण का युग है। आज के समय में प्रत्येक क्षेत्र में असंख्य भाग एवं उपभाग बनाकर उसके विशेषज्ञों का निर्धारण एवं शिक्षा-दीक्षा भी उस विशेष भाग उपभाग के अनुरूप किये जाने का प्रावधान है। संगीत कला में भी विशिष्टिकरण के मत को सोत्साह अपनाया जा रहा है। जिसके परिणाम स्वरूप अनेक सांगीतिक व्यवसाय हमारे समक्ष आते हैं। इन व्यवसायों एवं जीवन-जगत से इनके संबंधों की चर्चा इस रूप में की जा सकती है–

(1) संगीत शिक्षण एवं इसका व्यवहारिक स्वरूप

किसी भी विद्या का अस्तित्व एवं संवर्धन तभी संभव है जब उसका पीढ़ी-दर-पीढ़ी शिक्षण होता रहे। भारतीय संस्कृति में शिक्षक का पद ब्रह्मा-विष्णु-महेश के समान माना गया है। संगीत जैसी गुरूमुख से सीखी जाने वाली कला में तो गुरू अर्थात् शिक्षक का स्थान सर्वोपरि है। वर्त्तमान समय में विद्यालयों, शिक्षण, संस्थाओं, विश्व-विद्यालयों आदि में अनेक शिक्षक कार्यरत हैं। ये सभी पूरी तन्मयता से संगीत-शिक्षण की सेवा में लीन होकर जीविकोपार्जन कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त आजकल व्यक्तिगत शिक्षण अर्थात् प्राइवेट ट्यूशन भी अन्य विषयों की भाँति संगीत के क्षेत्र में देखने को मिलता है। इस शिक्षण-विधि में विद्यार्थी को शिक्षक किसी निर्दिष्ट स्थान पर व्यक्तिगत रूप से शिक्षण प्रदान करते हैं।

आज की युवा पीढ़ी में बुद्धि-चातुर्य निःसंदेह विद्यमान है, किन्तु सही तालीम के अभाव में औरलंबी अवधि तक शिक्षण न मिलने के कारण ये युवक-युवतियाँ कला की पराकाष्ठा पर पहुँचने में असमर्थ हैं। उचित समय एवं सुव्यवस्थित शिक्षण से अर्थात् एक सुयोग्य, कुशाग्र एवं कुशल शिक्षक के सान्निध्य में विद्यार्थी प्रशिक्षण साधना के रूप में प्राप्त करें तो संगीत एवं संगीतकार दोनों का ही विकास संभव है।

हमारे समाज में संगीत के शिक्षण संबंधी व्यवसायिक संभावनाएँ अन्य सांगीतिक व्यवसायों से अधिक पायी गयी है।

मंच प्रर्दान एवं इसका व्यवसायिक स्वरूप :

संगीत क्षेत्र में मंच प्रदर्शन का व्यवसाय एक चित्ताकर्षक व्यवसाय है। भारतीय संगीत में घराना परंपरा में प्रशिक्षण का मुख्य ध्येय मंच प्रदर्शन ही रहा है। समय-समय पर संगीतकार अपनी प्रतिभा कौशल आदि का परिचय जन साधारण को मंच के माध्यम से देते हैं। इसके दो रूप हमें देखने को मिलते हैं। -

(क) प्रत्यक्ष मंच प्रदर्शन

(ख) अप्रत्यक्ष मंच प्रदर्शन

(क) प्रत्यक्ष मंच प्रदर्शन - इसके अंतर्गत कलाकार जनता के सामने बैठकर मंच प्रदर्शन करता है। इसके भी दो रूप देखने को मिलते हैं -

---

वि. वि. संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

व्यक्तिगत प्रत्यक्ष मंच

प्रायोजित प्रत्यक्ष मंच

व्यक्तिगत मंच :- व्यक्तिगत रूप से मंच प्रदर्शन व्यवसाय शास्त्रीय संगीत में कम ही पाया गया है, परंतु सुगम संगीत में यत्र-तत्र इस प्रकार का मंच प्रदर्शन देखने को मिलता है। इस संदर्भ में वसंत का विचार इस प्रकार है - 'आज मंच पर गजल, भजन, लोकसंगीत, कव्वाली और डिस्को का साम्राज्य हैं। जो शास्त्रीय संगीतकार बचे हैं, वे किसी-न-किसी अन्य व्यवसाय से पेट भर रहे हैं। मंच पर उन्हें किसी एन्टीक वस्तु (प्राचीन कला कृति) के रूप में देखने के लिए संगीत-शून्य फैशन-परस्त नर-नारी ही अधिक हो जाते हैं।''

परंतु इसका आशय यह बिल्कुल नहीं है कि गजल, भजन, लोकगीत, आदि का प्रचलन होना ही चाहिए। ये कटाक्ष शास्त्रीय संगीत की दयनीय स्थिति को देखते हुए प्रदर्शित किये गये हैं अर्थात् जो संगीत साधक प्रतिदिन आठ-दस घंटे रियाज कर अपने कला-कौशल को परिमार्जित करता है उसे यदि मंच प्राप्त न हो अथवा अपने जीवन-यापन की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उसे कोई अन्य व्यवसाय अपनाना पड़े तो यह न्याय संगत नहीं होगा। पर यहाँ यह कहना भी उल्लेखनीय है कि शास्त्रीय संगीत के दर्शन-श्रवण का आनंद लेने के लिए भी कुछ संबंधित ज्ञान होना आवश्यक है और ऐसे ज्ञानी श्रोताओं की संख्या अति अल्प है। जहाँ श्रव्य-शुल्क देकर श्रवण का प्रश्न आता है तो वहाँ इन अल्पज्ञों की संख्या आर्थिक विशोताओं के कारण और भी कम हो जाती है।

सुगम संगीत के क्षेत्र में व्यक्तिगत मंच प्रदर्शित करना कुछ सीमा तक सफल प्रतीत होता है। अनेक सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक समारोहों, मेलों आदि पर गजल, भजन एवं गीतों आदि के गायक, वाद्यवादक एवं नर्तक अपनी कला-कौशल का प्रदर्शन सभा मंडपों एवं अन्य स्थानों पर करते हैं। धार्मिक स्थलों पर धार्मिक भावना से भजन-कीर्तन करने वाले नियुक्त गायकों-वादकों के लिए भी जीविकोपार्जन हेतु कुछ राशि अवश्य निर्दिष्ट होती है।

प्रायोजित प्रत्यक्ष मंच : हमारा शास्त्रीय संगीत वर्त्तमान समय में प्रायोजक संस्थाओं के आधार पर ही देदीप्यमान है। प्रायोजक का शाब्दिक अर्थ होता है मिलाने वाला। परंतु व्यवहार में किसी कार्यक्रम हेतु जो प्रबंधकीय एवं आर्थिक भार वहन करता है वह प्रायोजक कहलाता है। इन प्रायोजक संस्थाओं में 'स्पिक मैके' सोसायटी फॉर प्रमोशन ऑफ इंडियन कलासिकल म्यूजिक एंड कल्चर अमांगस्ट यूथ, संगीत नाटक अकादमी, साहित्य कला परिषद् आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त इंडिया टुडे म्यूजिकल ग्रुप, एन.डी.ए.सी., संकल्प आदि संस्थाऐं भी समय-समय पर शास्त्रीय संगीत के कलाकारों को प्रोत्साहन देने हेतु उसके कार्यक्रमों का आयोजन कराती है एवं उन्हें उचित पारितोषिक, पुरस्कार आदि भी सम्मान सहित प्रदान करती रहती है। इन प्रायोजकों के माध्यम से अनेक संगीतकार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अपनी कला का प्रदर्शन कर पाये हैं।

विभिन्न संस्थाओं द्वारा लोक-संगीत, भाव-संगीत आदि के कार्यक्रम भी आयोजित होते रहते हैं।

(ख) अप्रत्यक्ष मंच प्रर्दान :- जो प्रदर्शन जनता के सम्मुख बैठकर न प्रस्तुत करके विभिन्न मीडिया द्वारा प्रस्तुत किया जाय वह अप्रत्यक्ष मंच प्रदर्शन माना जाता है। आकाशवाणी, दूरदर्शन, ऑडियो-विडियो कैसेट्स, सी.डी. आदि इसी के अंतर्गत आती है। इन माध्यमों के जरिये भी संगीतकारों को मंच एवं पारितोषिक प्रदान किया जाता है।

इसके अतिरिक्त 'एलबम्स' ऑडियो-विडियो, सी.डी. कैसेट्स आदि से भी व्यक्तिगत रूप से इसके निर्माताओं द्वारा संगीतकार मंच एवं पारितोषिक प्राप्त करते हैं।

(3) पार्श्व संगीत एवं इसका व्यावसायिक स्वरूप पार्श्व से अभिप्राय है जो समक्ष न हो। पार्श्व संगीतकार रंगभूमि अर्थात मंच पर न होकर आवरण में ही रहकर गायन, वादन मंच कार्यक्रम की सहायता हेतु किया करते हैं। पार्श्व संगीत का प्रयोग करने वाले स्थलों में चित्रपट एवं दूरदर्शन का सर्वाधिक महत्व है। इसके अतिरिक्त आजकल प्रचार-प्रसार

आदि कतिपय स्थलों पर भी इसका व्यवहार किया जाता है। आज के विज्ञापन युग में इसका महत्व सर्वाधिक है। लता मंगेशकर, सुरैया, के.एल सहगल, मोहम्मद रफी आदि चर्चित संगीतज्ञ चित्रपट संगीत की देन है।

आधुनिक समय में 'व्यक्तिगत दूरदर्शन' जिसे सामान्य भाषा में 'केवल नेटवर्क' कहा जा रहा है, का भी बहुत प्रचार हो गया है। इसमें स्टार प्लस, सोनी टी.वी., जी.टी.वी., जी. न्यूज, आज तक चौबीस घंटे प्रसारण करता है। इन सभा केन्द्रों ने अपने कार्यक्रम में संगीत के प्रत्यक्ष प्रदर्शन के अतिरिक्त पार्श्व-गायन वादन को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। इनमें प्रसारित हो रहे अनेक धारावाहिकों के शीर्षक गीतों एवं कहीं-कहीं भाव प्रदर्शन हेतु पार्श्व संगीत का प्रयोग किया जाता है। यहीं नहीं समाचार केन्द्रीय प्रसारण केन्द्र भी पार्श्व संगीत को अपनाते हैं।

इनके अतिरिक्त सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत दूरदर्शनों पर विज्ञापन को अधिक आकर्षक बनाने हेतु पार्श्व संगीत का प्रयोग होता है। इस प्रकार इन माध्यमों से पार्श्व गायक-वादक को जीविकोपार्जन प्राप्त हो रहा है।

(4) नाट्य संगीत एवं इसका व्यवसायिक स्वरूप नाटक में प्रत्यक्ष मंच प्रदर्शन व पार्श्व दोनों प्रकार में संगीत का प्रयोग होता है। भरतकृत नाट्यशास्त्र में नाटक का संगीत से घनिष्ठ संबंध बताया गया है। नाटकों द्वारा समाज को विभिन्न प्रकार का संदेश अत्यंत कलात्मक ढ़ग से व सरलता से पहुँचाये जाते हैं।

वर्तमान समय में नाटक का प्रचलन अति अल्प है। इसे व्यवसाय के रूप में अपनाना अत्यंत जटिल है। अनेक संयोजक संस्थाएँ ही नाटक विधा का संरक्षण कर रही है। नाटक की भाँति ही नौटंकी व स्वांग आदि का प्रचलन भी प्राचीन समय में था परंतु वर्तमान समय नगरीय क्षेत्रों में तो इसका पूर्णतः लोप हो चुका था। कुछ धार्मिक नाटकों रामलीला एवं कृष्ण लीला आदि का प्रचलन शहरों में जनसाधारण में धार्मिक भावनाओं के कारण प्रिय है परंतु कलाकारों के धन-अर्जन का कुछ निश्चितता इसमें नहीं हैं।

नाट्य विधाओं के विलुप्त होने की विडम्बना को 'महेन्द्र' पाल कम्बोज इस प्रकार व्यक्त करते हैं 'किसी लोक साहित्य वेत्ता, अध्येता या पुरानी पीढ़ी के किसी बुजुर्ग से यदि लोक साहित्य को किसी विधा (लोक गीत, लावणी, नौटंकी, स्वांग आदि) पर बात करें तो अक्सर शून्य में झाँकने लगता है और उसकी आँखें अतीत की कल्पना में खो सी जाती है।

गीतकार एवं इसका व्यवसायिक स्वरूप

गायन विधा शब्दों के अभाव में अधूरी प्रतीत होती है। विभिन्न अवसरों के अनुरूप छन्द एवं लय के लिए लिखे गये गीत ही समारोहों के सांगीतिक कार्यक्रमों को सार्थकता प्रदान करते हैं। प्राचीन काल में चारण, भाट आदि आश्रय दाता की प्रशंसा में तथा राष्ट्र भक्ति की भावना जगाने हेतु लिखा करते थे। वर्तमान समय में गीतकार फिल्मों, दूरदर्शन-धारावाहिक, धार्मिक, राष्ट्रीय, सांस्कृतिक समारोहों एवं व्यक्तिगत रूप से अधिक विचारों के प्रचार-प्रसारण हेतु गीतों की रचना द्वारा धन अर्जित करते हैं।

धुनकार एवं इसका व्यवसायिक स्वरूप

सभी प्रकार के गीतों एवं वाध वादन हेतु स्थिति अनुरूप धुनें बनाकर धुनकार अपनी कला का परिचय देते है एवं इसके माध्यम से जीविकोपार्जन करते हैं।

संगीत निर्देशक एवं इसका व्यावसायिक स्वरूप स्थिति अनुरूप गीत, धुन, वाधयंत्रों आदि की सुव्यवस्था का कार्य संगीत निर्देशक का होता है। संगीत निर्देशक के अधीन रहकर जो व्यक्ति गीत के मध्य के संगीत व वाध-वादकों का नियोजन करे उसे 'अरेन्जर' अथवा 'कंडक्टर' कहा जाता है। कई बार गीतकार, धुनकार, संगीत निर्देशक, अरेन्जर व गायक का कार्य एक ही व्यक्ति कर लेता है। गीत, धुन एवं संगीत निर्देशन के मुख्यक्षेत्र नाटक, गीत नाट्य (ओपेरा), नृत्य नाट्य (बैले), वृंदगान, दूरदर्शन, चित्रपट आकाशवाणी आदि है। इस क्षेत्र में गीतकार, धुनकार एवं संगीत निर्देशक अपनी- अपनी कला-कौशल का

प्रदर्शन कर धनोपार्जन करते हैं।

रूप-सज्जाकार एवं इसका व्यावसायिक स्वरूप

गायन, वादन तथा नृत्यादि के मंच, दूरदर्शन, एलबम, वीडियो कैसेट, सी.डी. आदि पर प्रदर्शन हेतु किस प्रकार मंच की व्यवस्था करनी है, कलाकारों की पोशाक-वेशभूषा तथा आभूषणादि का रंग डिजाईन आदि का निर्णय रूप-सज्जाकार लेता है। इसका नृत्य के कार्यक्रमों में सर्वाधिक महत्व है।

वाद्य-निर्माता एवं व्यवसायिक स्वरूप

वाद्यों के निर्माण के अभाव में सांगीतिक कार्यक्रमों की कल्पना भी नहीं की जा सकती। असंख्य वाध-निर्माण सांगीतिक वाद्यों के निर्माण द्वारा अर्थोपार्जन कर रहे हैं। आधुनिक समय में एलेक्ट्रोनिक वाद्य जैसे इलेक्ट्रोनिक तानपुरा, इलेक्ट्रोनिक तबला आदि का अधिक प्रचलन हो गया है। इसके अतिरिक्त सिंथेसाइजर, इलेक्ट्रोनिक ड्रम आदि विदेशी यंत्र भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस प्रचार से इनके निर्माताओं एवं वितरकों को भी अच्छी आय के साधन उपलब्ध हुए हैं।

कैसेट, सी.डी., एलबम के निर्माता एवं इसका व्यवसायिक स्वरूप

आधुनिक समय में कैसेट, सी.डी. एलबम आदि के प्रचलन से इनमें कार्य करने वाले गायकों, वादकों, निर्देशकों के अतिरिक्त धनोपार्जन इनके निर्माता भी करते हैं।

विभिन्न प्रादेाकि गीतों के अनुवादक, प्रकाशक एवं वितरक

सांस्कृतिक एकता का अभिप्राय है कि विभिन्न प्रादेशिक गीतों के भावों को वे लोग भी समझ पाऐं जो उन प्रादेशिक भाषाओं को नहीं समझ पाते। इस दृष्टि से प्रादेशिक गीतों के अनुवादकों, प्रकाशन केन्द्रों एवं वितरकों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। ये लोग संगीत कला की सेवा में प्रत्यक्ष रूप से सहयोग देकर अर्थोपार्जन करते हैं।

संगीत शास्त्रकार एवं ग्रंथ प्रकाशक एवं इसका व्यवसायिक स्वरूप

संगीत शास्त्रकारों का संगीत कला के क्षेत्र में तो अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। परंतु संगीत द्वारा अर्थोपार्जन की पंक्ति में इनकी गणना अंतिम कड़ी में ही होती है। भारतीय संगीत में भरतमुनि, मतंग, शारंगदेव, अहोबल, सोमनाथ, मंजरीकार एवं अन्य अनेक ऐसे संगीतशास्त्रियों का नाम उल्लेखनीय है जिनकी विद्वता के कारण आज हमारे देश का संगीत विश्व में अक्षुण्ण महत्व बनाये हुए हैं आधुनिक समय में अनेक संगीतशास्त्री अपने ग्रंथों के प्रकाशन से लेखकों के अतिरिक्त प्रकाशक भी अच्छी आय अर्जित कर रहे हैं। संगीत की सौम्यता व माधुर्यता में शास्त्रबद्धता का उत्कृष्ट एवं उचित समन्वय ये शास्त्रकार कुशलतापूर्वक कर सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि संगीत के शास्त्रों का प्रतिपादन करते हुए व्यावहारिक दृष्टि से संगीत-सौंदर्य को बनाए रखने का ध्यान रखना भी आवश्यक है। इसे वास्तव में सजाने एवं संवारने का काम शास्त्र ज्ञाता ही करते हैं।

संगीत पत्रकार, समीक्षक एवं संपादक एवं इसका व्यवसायिक स्वरूप

कोई भी संगीतकार अपने कला कौशल के प्रदर्शन के पश्चात् उसके लिए जन साधारण की प्रतिक्रिया अवश्य जानना चाहता है। इसके अतिरिक्त यदि कलाकारों की आलोचना भी हो तो उन्हें अपनी त्रुटियों का आभास भी हो जाता है। इन सब कार्यो का निष्पादन एक पत्रकार भलीभाँति कर सकता है। ये पत्रकार स्थान-स्थान पर हो रहे कार्यक्रमों का अवलोकन करके उसकी आलोचनात्मक व्याख्या विभिन्न समाचारों, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, वार्षिक पत्रिकाओं में करते हैं। ये पत्रकार समीक्षक, आलोचक एवं संपादक आदि अर्थोपार्जन के साथ-साथ जन कल्याण के लिए यदि कार्य हो रहा तो उस पर तुरन्त अंकुश लगाने का कार्य भी कर सकते हैं।

सांगीतिक चिकित्सा एवं इसका व्यावसायिक स्वरूप

संगीत चिकित्सा के व्यवसाय के चिह्न उन्हें दशक में बताते हुए भागवतशरण शर्मा कहते हैं - लाहौर के डॉ. जै. पाल जो चैम्बर लेन रोड में रहते थे संगीत द्वारा चिकित्सा करते थे उनकी दुकान का नाम ''म्यूजिकल मेडिकल इन्स्टीट्यूट'' था। वर्णित विवेचन से स्पष्ट होता है कि संगीत जीविकोपार्जन का साधन है। संगीत के क्षेत्र में अनेक भाग एवं उपविभाग है जिससे संगीतज्ञ दिशा विशेष में अनुकूल प्रशिक्षण प्राप्त कर अपनी व्यक्तिगत कुशलता एवं चातुर्य समावेश कर जीविकोपार्जन की दिशा में सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज की मर्यादाओं का पालन करने हेतु एवं समाज की धारा में प्रवाहमान होने हेतु अर्थात् समय-समय पर बदलते परिवेश में परिवर्तित होते रहने के लिए एवं अन्य सामाजिक जीवन संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु मनुष्य को कोई व्यवसाय अवश्य अपनाना पड़ता है।

भारत में सांगीतिक इतिहास पर दृष्टिपात् करने से ज्ञात होता है कि वैदिक काल से अब तक संगीत को अन्य उद्देश्यों की पूर्ति के साथ-साथ अर्थोपार्जन हेतु भी अपनाया जाता है। वैदिक काल में यज्ञादि के अवसरों पर दास कुमारियों का वर्तुलकार नृत्य इसी लक्ष्य से होता था। संगीत के भागों व विभागों का वर्गीकरण उस समय हो चुका था। व्यवसायिक संगीतज्ञों की जातियाँ सूत, शैलूष आदि थी। बौद्ध कालीन जातक ग्रंथों की कथा से ज्ञात होता है कि उस समय व्यवसायी संगीतज्ञों का अत्यधिक आदर था। उन्हें अनेक अवसरों पर अपने कला-कौशल दिखाने हेतु आमंत्रित किया जाता था एवं उचित पारितोषिक सम्मान सहित प्रदान किया जाता था। उस समय कलाकार एवं श्रोता दोनों कला की गरिमा बनाए रखने हेतु जागरूक थे। मौर्यकाल में अर्थोपार्जन केन्द्रित अर्थात आर्थिक प्रणालियों संबंधी कौटिल्य कृत ''ग्रंथ'' अर्थशास्त्र में संगीत व्यवसाय संबंधी जानकारी भी प्राप्त होती है। इस ग्रंथ के अनुसार मौर्य काल में संगीतज्ञों को राजाश्रय प्राप्त था एवं उनसे आवश्यकता पड़ने पर गुप्तचरों का काम भी लिया जाता था।

संगीतकार व्यक्तिगत रूप से भी अर्थोपार्जन करते हैं। इन्हें अपना कार्य करने की स्वतंत्रता रहती थी परंतु समाज कल्याण के विरूद्ध कार्य करने वालों पर सरकार के संगीत का प्रचार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी होता था।राजपूतों, अलाउद्दीन खिजली, मुगल शासकों एवं राजा मानसिंह तोमर आदि के शासन काल में संगीतज्ञों को राज्याश्रय प्राप्त था। राज्याश्रय प्राप्त होने पर जीविकोपार्जन हेतु निश्चितताएँ संगीतज्ञों को प्राप्त होती थी एवं इस कारण वे तन्मयता से संगीत के विकास में अपनी सेवा प्रदान करते थे। अमीर खुसरों एवं तानसेन इस तथ्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं परंतु मुगल शासकों की विलासितापूर्ण प्रवृत्ति के कारण संगीत की पवित्रता को हानि पहुँची एवं इस व्यवसाय को हेय दृष्टि एवं घृणा का सामना करना पड़ा। परंतु अनेक साहसियों के उत्साहपूर्वक कार्यो से संगीत कला एवं उसके व्यवसाय को समाज में सम्मान प्राप्त हुआ।

इस प्रकार मानव जीवन का संबंध व्यवसायिक धरातल पर संगीत से अटूट है। संगीतज्ञ इसे व्यवसाय के रूप में आदि काल से अपनाते आये हैं और समाज इनसे लाभान्वित होता आया है।

संदर्भ :-

1. परांजपे शरतचन्द्र श्रीधर, भारतीय संगीत का इतिहास
2. बसंत, संगीत विशारद
3. संगीत पत्रिका, लेखक कंबोज महेन्द्र पाल आलेख आधुनिकता की चकाचौंध में लुप्त हो गयी है स्वांगनाट्यकला (जुलाई 2001)
4. शर्मा पं. भगवत शरण, संगीत निबंध मंजरी

हिन्दुस्तानी संगीत के स्तम्भ ''घराने''

अयना बोस

''धराना' प्राचीन गुरुकुल पद्धति का ही परिवर्तित रुप है। सामान्य रुप से घराना का अर्थ वर्ग, परिवार, कुटुम्ब, घर इत्यादि से लिया जाता है। अर्थात घराना शब्द का अर्थ वंश वैशिष्टय कहे तो भूल नहीं होगी। घराने की परम्परा किसी संगीतज्ञ द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति और पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती रहती है। घरानो की उत्पत्ति संगीत वो विकास के ख्याल से नहीं बल्कि इसकी पृष्ठभूमि में कलाकार की संर्कीणता उसकी स्वार्थपरता एवं उसकी बुद्धिहीनता भरी हुई है। इसी वैयक्तिक स्वार्थ के संकुचित गर्भ से घरानों का जन्म हुआ। घरानों में संगीत के विभिन्न पहलुओं पर अधिकार प्राप्त कर तथा समय के कुछ संयोजना कर इसे पीढी दर पीढी या शिष्यों के माध्यम से प्रवाहमान रखा गया। पं. शारंगदेव ने भी संगीत की इसी तालीम की ओर दृष्टि डालते हुए लिखा है–

''सुसम्प्रदायों गीतज्ञे गीयते गायनाग्रणी।''

उत्तर भारत में गायकों व वादकों के अनेक घरानो का उल्लेख मिलता है। ऐतिहासिक दृष्टि से लगभग सभी घरानों की परम्परा 16वीं सदी से निरन्तर विकसित होती रही है। उस काल में स्वामी हरिदास, मियां तानसेन एवं बैजू बावरा संगीत जगत में नक्षत्र के समान थे, परन्तु घरानो की उदयाभव की कड़ियां 18वीं व 19वीं सदी से स्पष्ट रुप से मिलती है।

ग्वालियर की संगीत परम्परा में तानसेन, बैजू बावरा के अतिरिक्त 16वीं सदी के प्रारम्भ में मानसिंह तोमर का उल्लेख किये बिना हिन्दुस्तानी संगीत मुमकिन नहीं है। 1857 के पूर्व ग्वालियर के महाराजा ''झिनकू राव सिंधिया'' थे। उनके समय में कादिर बख्श और उनके पुत्र पीरबख्श का संगीत में विशेष नाम था। दौलत राव महाराज पीरबख्श जी के शिष्य थे। पीरबख्श के बडे भाई नत्थन खां के दो पुत्र थे। हद्दू खां और हस्सू खां। किंवदन्ती है, कि ख्याल गायकों के प्रसिद्ध घराने कव्वाल बच्चों के घराने के बडे मुहम्मद खां ग्वालियर आये तो तत्कालीन महाराज जिया जी राव ने उनसे हद्दू खां व हस्सू खां को तालीम देने का आग्रह किया पर उन्होंने इस प्रस्ताव को मानने से इन्कार कर दिया। तब महाराज ने हद्दू तथा हस्सू खां को मुहम्मद खां को परदे की आड़ से सुनने और रियाज करने के लिये कहा। बडे मुहम्मद खां एक विशेष प्रकार की तान करते थे, जिसकी कड़क को बिजली तान कहा जाता था। एक बार जिया जी राव के आदेश पर जब हद्दू खां ने उस तान को गाने का प्रयास किया तो तत्काल उनकी मृत्यु हो गयी। उनके दो पुत्र क्रमशः छोटे मुहम्मद खां और रहमत खां ने भी काफी ख्याति अर्जित की। रहमत खां एकदम फकीर की तरह थे। केवल अपनी इच्छा से ही गाते थे। महाराज जियाजी राव को उनका गाना सुनना होता तो वेष बदल कर रहमत खां की डयोढी पर खड़े-खडे गाना सुनते रहते। इस घराने को प्रसिद्ध बनाने में आचार्य कृष्ण राव पंडित, बाल कृष्ण बुआ, पं. विष्णु नारायण भातखण्डे, पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर,

अतिथि प्रवक्ता, इलाहाबाद डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद

नारायण राव व्यास, विनायक राव पटवर्द्धन, ओंकार नाथ ठाकुर, प्रो. वी. आर. देवधर, गनपत राव भैया व मौजुद्दीन खां शामिल है।

आगरा घराने में प्रवर्त्तक हाजी सुजान खां थे। यह ''नौहार बानी'' ध्रुपद शैली के आचार्य थे। पूर्व में उनका नाम 'सुजान दास'' था। बाद में इस्लाम धर्म अपना लेने से वे सुजान खां हो गए। इसी घराने में कुछ पीढियों बाद 'श्याम रंग' और सरस रंग नाम के कुछ प्रसिद्ध गायक हुए। श्याम रंग के पुत्र खुदाबख्श हुए जो धग्धे खुदाबख्श के नाम से प्रसिद्ध हुए। ग्वालियर के उस्ताद नथन खां पीरबख्श से इन्होंने तालीम ली। इसी समय में जयपुर के महाराज रामसिंह को संगीत का बड़ा मर्मज्ञ माना जाता था। उनके यहां रजब अली, इमरत हुसैन, मुबारक अली और बहराम खां जैसे दिग्गज गुणीजन दरबार की शोभा बढाते थे।

धग्धे खुदाबख्श की इस घराने में एक लम्बी परम्परा चली उनके पुत्र गुलाम अब्बास खां थे। जिनके नाती ''आफताबे मौसिकी फैयाज खां थे। धग्धे खुदाबख्श के दो भतीजे शेर खां और भरतपुर वाले अलीबख्श भी उनके शिष्य रहे। खुदाबख्श के छोटे पुत्र गुलाम हैदर खां (उर्फ कल्लन खां) भी प्रसिद्ध गायक हुए। उस्ताद फैयाज खां की गायकी, सुनने वालो को विशेष रस देती थी। क्योंकि उस्ताद जी ने अपने घराने के साथ अपने ससुर अतरौली के महबूब खां जी से भी तालीम ली थी। इन दो शौलियों के मिश्रण से उन्होंने अपनी एक नई शैली को जन्म दिया। इसी घराने के पं. राम राव नायक ने अता हुसैन खां से गायन की शिक्षा ली। लेकिन शिष्य काल से ही उस्ताद फैयाज खां को सुना और अपनाया। उस्ताद फैयाज खां की शैली को ठीक से प्रस्तुत करने की क्षमता उनमें थी, वह किसी और में नही देखी गयी। प्रो. एम.आर. गौतम ने उनसे गायन की शिक्षा ली। आगरा घराने के एक और विशिष्ट गायक पं. दिलीप चंद्र ने भी फैयाज खां एवं भास्कर बुआ से गायन की तालीम हासिल की। उनकी गायकी मे क्लिष्टता के साथ उनकी कल्पना शक्ति को भी महसूस किया जा सकता हैं।

दिल्ली घराने का स्पष्ट प्रमाण इतिहास में अट्ठारह सौ ई. से मिलता है उस काल में मियां अचपल नाम से उस्ताद हुए। उनके समकालीन थे, छंगे खां दोनो मुगल दरबार के गायक थे। कुतब बक्श जो तानरस के नाम से प्रसिद्ध थे, मियां अचपल के शिष्य थे। तानरस के दो शिष्य हुए जो संगीत जगत मे नक्षत्र थे। अलीबक्श और फतेह अली जो ''अली-फत्तू'' के नाम से बेहद प्रसिद्ध थे। अलीबक्श पटियाला के कालू खां के सुपुत्र थे। फतेह अली को बादशाह बहादुर शाह जफर अपना उस्ताद मानते थे। तानरस के समय में जहूर खां सिकंदराबादी, नत्थन खां, रहमत खां ग्वालियरी, अल्लदिया खां अतरौली वाले, नजीर खां, तथा पुत्तन खां जोधपुरी उल्लेखनीय हैं। तानरस खां जी के पुत्र उमरावं खां और उनके पुत्र सरदार खां लाहौर में बस गए। काले खां फतेह अली खां के प्रसिद्ध शिष्य हुए। जिनके बडे भाई थे अलीबख्श कसूरवाले, अलीबक्श के पुत्र हुए। बड़े भाई गुलाम अली खां जिन्हें पटियाला घराने के स्तम्भ के रुप में आज तक याद किया जाता है। अलीबक्श की शिष्या सरदार बाई भी बेहद नामी गायिका हुई। उन्हीं के सारंगी वादक गुलाम मोहम्मद ने सारंगी बजाना छोडकर गायकी में काफी नाम कमाया।

अतरौली में भी कई घरानों की शाखाएं है। इनमें कुछ राजस्थान के उनियारा में बस गए। इस घराने के उस्ताद अल्लादिया खां बेहद यशस्वी गायक थे। मूलतः ये ध्रुपदियो का घराना था। पर ये लोग ख्याल और ठुमरी पर भी पूरा अधिकार रखते थे। लेकिन श्रोताओं के सम्मुख प्रदर्शन नहीं करते थे। अल्लादिया खां ने ध्रुपद छोड़ ख्याल को अपनाया। तभी से इस घराने में ख्याल का प्रचलन शुरु हुआ। इस घराने में उनके पुत्रों के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध गायिका केसर बाई केरकर हुई। जो श्रेष्ठतम गायिका थी। उनकी आवाज में सूक्ष्म से सूक्ष्म और जटिल अंगो को सहज रुप से अभिव्यक्त करने की क्षमता थी। अतरौली घराने में ही उस्ताद मंजी खां, उ. भुर्जी खां, उ. गुलू भाई जश्दन वाला के अतिरिक्त मल्लिकार्जुन मंसूर, मोधूवाई कुर्डीकर, पं वामनराव राडोलिकर जैसे ख्याल गायकी के सितारे तैयार हुए। विदुषी किशोरी अमोनकर तथा श्रुति शिडोलिकर इसी घराने की प्रसिद्ध गायिका है।

तत्वज्ञों का संगीत - अंतःस्थ संगीत

अणिमा श्रीवास्तव

''बूँद समाना सिंधु में यह जाने सब कोय।
सिंधु समाना बिन्दु में बिरला बुझे कोय।''

ये ''बिरले'' लोग ही सुसंस्कृत भाषा में तत्वज्ञ कहे गये। जिनका साध्य ''आत्म सत्ता'' का सारतत्व शाश्वत चैतन्य है। दूरदर्शी विवेकशीलता पर आधारित मानवीय नैतिक गरिमा के साथ जुड़ी उत्कृष्टता ही जिसे एक शब्द में ''अध्यात्म'' कह सकते हैं, इन विज्ञों का प्रतिपाद्य रहा।

सृष्टि के प्रत्येक तत्वों का दो स्वरूप है - तटस्थ और तात्विक। तटस्थ बाह्य स्वरूप है और तात्विक आंतरिक। संगीत भी इससे अछूता नहीं। संगीत भी अपने बाह्य रूप में जन-मन रंजक और अपने आन्तरिक स्वरूप में भवभंजक है। बाह्य संगीत तो बोधगम्य है किन्तु ''शब्द संगीत'' से इतर ''महाशब्द'' का भी संगीत है जिसे स्थूल कर्णेन्द्रिया सुन नहीं सकती। वरन् यह संगीत, एकाग्रता, ध्यान, धारणा, साधना, उपासना द्वारा अन्तः चेतना से अनुभूत किया जा सकता है। जो नादयोगियों, ध्यानियों, साधको को ही श्रुतिगोचर है। तत्वज्ञों ने इस संगीत को ''ज्ञान गोचर'' शिव के समान ''स्त्रोत ध्वनि'' कहा है। भारतीय विचारधारा में यही अनाहत नाद, व दिव्य नाद है, पाश्चात्य में इसे 'Inner Voice' और 'Elan Vital' कहा गया, इस्लाम इसे ''कलमा'' कहता है तो ईसाइयों ने इसे 'Word' कहा है। यह वही ''अन्तःस्थ संगीत'' है जो अनादि काल से झंकृत हो रहा है। जिसके विषय में संत कबीर ने ''तत्व झंकार ब्रहमास्त्रमाही'', ''जोग जगा अनहद धुनि सुनिके'', आदि कहकर संबोधित किया है।

सारतः यह आत्मिक स्वर, भीतर की छन्दबद्धता है जो निरन्तर स्पन्दित हो अखण्ड तारतम्यता में प्रवाहित हो रहा है। इस संगीत को बजाने हेतु न बाह्य वाद्य की आवश्यकता है न वादक की, न ज्ञाता चाहिए न ज्ञेय। समस्त द्वैत समाप्त हो.ोष एक बचता है। ''एकोन्हमं द्वितीयो नास्ति।''

शोध छात्रा, मगध महिला महाविद्यालय, पटना

''शास्त्रीय संगीत में बदलाव लाने के लिये दृश्य श्रव्य माध्यमों का योगदान''

अरूण कुमार

शास्त्रीय संगीत के इतिहास में अगर नजर डाले तो प्राचीन काल में शास्त्रीय संगीत का अधिक विकास हुआ। लेकिन उस समय श्रेष्ठ कलाकारों को सुनने का उचित साधन नहीं था क्योंकि उस समय संगीत के कार्यक्रमों का आयोजन राजाओं महाराजाओं के दरबार तक ही सीमित था। रिकॉर्डिंग तथा दूरदर्शन की अन्य कोई सुविधायें नहीं थी। इसलिये समाज के अन्य लोगों को संगीत सुनने का अवसर नहीं मिल पाता था। क्योंकि समाज के मुख्य लोगों को ही दरबारों में प्रवेश मिलता था। अतः ये सभी सामाजिक बन्धन तथा समस्या होने पर आमजन मानस तक संगीत को पहुँचाना बहुत ही मुश्किल था। तकनीक का विस्तार ना होना ये सभी समस्याओ का कारण था।

कलाकार कितना भी बड़ा हो या छोटा पर उसकी हार्दिक इच्छा होती है की लोग उसकी कला को पहचाने तथा उसके अन्दर झलकने वाली प्रतिभा का गुणगान हो पर उस समय ऐसा सम्भव नहीं था क्योंकि तकनीक इतनी अधिक विकसित नहीं थी कि कलाकारों का जगह-जगह प्रचार-प्रसार हो सके अतः जरूरत थी बदलाव की, समय बदलता गया और धीरे-धीरे तकनीक विकास हुआ जिसका परिणाम विभिन्न रूपों में हमारे सामने है।

वर्ष 1993 ई. में ल्तुमियर बन्धुओं द्वारा मोशन पिक्चर फोटो ग्राफी के बाद दृश्य मीडिया अस्तित्व में आया। हमारे वैज्ञानिक अनुसंधानों ने ध्वनि के प्रक्षेपण को ग्रहण करने की तकनीक को अधिक विकसित कर लिया जिसका परिणाम आज हम सबके सामने है। इस तकनीक का उपयोग विभिन्न क्षेत्रों में हो रहा है। घर बैठे किसी भी कलाकार को सुनना एवं उसके बारे में जानना बहुत ही आसान हो गया है। किसी भी संगीत को आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के माध्यम से घर बैठे सुन व देख सकते हैं। इन सब के पीछे एक बड़ा विज्ञान है जिसने हमें ये सुलभ किया है।

दृश्य श्रव्य उपकरणों का छात्रों की शिक्षा के लिये दिन-प्रतिदिन उपयोग बढ़ता जा रहा है। एक समय आया था सी.डी., वी.सी.आर. और फिर चिप का लेकिन अब तो हर छात्र इन्टरनेट से जुड़ा हुआ है जिसके कारण रिकॉर्डिंग एवं चिप की भी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अब तो सारी चीजें ऑनलाइन देखी जा सकती हैं। अब तो यह भी सुनने में आ रहा है कि संगीत की शिक्षा भी इंटरनेट के माध्यम से दी जा रही है। अतः हम सकते हैं कि आज के समय में किसी भी कलाकार की गायन शैली को ग्रहण करना पहले की अपेक्षा काफी आसान हो गया है, हम विभिन्न प्रकार की तकनीक क्रियात्मक संगीत के आलावा शास्त्र के लिये भी उपयोगी साबित हो रहा है जैसे इंटरनेट में कुछ संगीत के ग्रंथों को भी लोड करने का काम चल रहा है। जिसकी सहायता से छात्रों को संगीत के ग्रंथों का अध्ययन करने में सहायता मिलेगी। यूट्यूब,

शोध छात्र, राजा मानसिंह तोमर संगीत एवं कला विश्वविद्यालय, ग्वलियर

चिप, व्हाटसप आदि तकनीक भी इसमें मददगार साबित हो रही है।

अंत में दृश्य, श्रव्य को यदि मन व हद्य की संज्ञा दी जाये तो कम्प्यूटर प्रणाली को उसका मस्तिष्क कहा जा सकता है, जिसमें देखने सुनने समझने के अनंत द्वार खुल चुके हैं।

''भारतीय संगीत एवं अन्य कलाओं के विकास दृश्य, श्रव्य का माध्यम नई प्रणाली एवं परम्परा को जन्म देगा इसमें कोई सन्देह नहीं है।''

हानि :- ये अकाट्य सत्य है कि संगीत कला सभी कलाओं में सबसे सर्वश्रेष्ठ रही है क्योंकि इसमें सबसे कम यंत्रों की आवश्यकता होती है तथा इसे गुरूमुख विद्या की संज्ञा दी गई है इसमें कोई संदेह नहीं है। आजकल जितने भी माध्यमों का उपयोग हो रहा है उनमें से देखने वाली बात यह है कि जो छात्र इस तकनीक का उपयोग कर रहे हैं उनको किस हद तक इसका फायदा हो रहा है। सही मायने में संगीत की शिक्षा गुरू के सामने बैठकर ही सीखने से बारीकियों का पता चलता है। इंटरनेट तथा विभिन्न माध्यमों के प्रयोग से संगीत की उचित शिक्षा मिलेगी इसकी कोई गारंटी नहीं है जैसे राग श्री का ऋषभ तथा राग भैरव का ऋषभ में क्या अन्तर है यह यूट्यूब से पता नहीं चलेगा यह गुरू के सामने बैठकर ही पता चलेगा क्योंकि किस राग पर किस स्वर का कितना प्रयोग तथा किस तरह से प्रयोग तथा कहाँ पर कण स्वरों का प्रयोग होता है ये सभी महत्वपूर्ण जानकारियाँ गुरू से ही मिलती हैं, अन्यथा किसी भी छात्र को शिक्षण संस्थानों की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि गाते समय अपनी कमी किसी को पता नहीं चलती हैं तथा दृश्य, श्रव्य माध्यमों के उपयोग से राग हानि की ज्यादा संभावनायें होती हैं, इन सभी बारीकियों का ज्ञान गुरू द्वारा ही प्राप्त होता है। अतः ये सभी माध्यमों का उपयोग केवल सहयोग के लिये यानी अपने गुरू के बताये हुये रास्ते पर चलते हुये अन्य कलाकारों की शैली का आकलन करके उसमें से अच्छी चीजों का समावेश करके अपने गायन को श्रेष्ठ बनाने के लिये करें तो ज्यादा अच्छा होगा।

तकनीकी युग में सबकुछ अच्छा ही होगा या इसके प्रयोग से बहुत फायदा होगा ये कोई निश्चित नहीं है।

योगदानः- किस तकनीक का किस रूप में प्रयोग करें तथा उससे अपने आप को हानि भी न पहुंचे ये अत्यंत महत्वपूर्ण है। जब से ये तकनीक आयी है प्राचीन कलाकारों की रिकॉर्डिंग दृश्य एवं श्रव्य रूपों में उपलब्ध है। ये विद्यार्थियों के लिये अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होगी।

आज हम इस धरोहर को तकनीक के माध्यम से संजोए हुये हैं। रेडियो तथा दूरदर्शन के विभिन्न चैनल इस क्षेत्र के लिये उपयोगी साबित हो रहे हैं।

हिमाचली समतल क्षेत्र के लोक संगीत में भाव रूप

ऋचु कालिया

भाव का संगीत से गहन सम्बन्ध है। लोक संगीत में भाव रूप का विश्लेषण करने से पूर्व भाव की अवधारणा को स्पष्ट करना समीचीन है। भाव की सर्वप्रथम व्याख्या भरत के नाट्यशास्त्र में मिलती है। उनके अनुसार भाव विभावों द्वारा निष्पन्न होता है, चतुर्विध अभिनय द्वारा कवि के हृदयगत भावों को सहृदय के चित्त में व्याप्त करता है। इसके अन्तर्गत विभाव, अनुभाव और संचारी सभी का समावेश हो जाता है। मनोवैज्ञानिक और भारतीय आचार्यों की दृष्टि से आठ स्थाई भाव हैं। अभिनवगुप्त, मम्मट, धनंजय आदि आचार्यों ने भी भावों के विविध रूपों का निरूपण किया है। वस्तुतः प्रत्येक रस का स्थायी भाव है यथा शृंगार रस का स्थायी भाव रति या प्रेम है। धनंजय की मान्यता है कि भाव में स्थायी और संचारी को ही अन्तर्मुक्त किया जाता है।

हिमाचल प्रदेश भारतवर्ष का अत्यन्त सुन्दर तथा पहाड़ी राज्य है जो अपनी स्थानीय परम्पराओं तथा सौन्दर्य के लिये विश्व भर में प्रसिद्ध है। हिमालय की गोद में स्थित हिमाचल के आँचल में ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा अनेक रोचक जानकारियों व गूढ़ रहस्थ्यों के असीम भण्डार विद्यमान है। इस आलेख का सम्बन्ध हिमाचल प्रदेश के समतल क्षेत्रों से है जिसके अन्तर्गत ऊना, हमीरपुर, मण्डी, काँगड़ा व बिलासपुर जनपद समाहित है तथा यहाँ के लोक संगीत में भाव के विविध रूपों का परिदृश्य प्रस्तुत किया गया है।

संगीत किसी भी रूप में हो, उसका स्वरूप स्थूल न होकर अत्यन्त सूक्ष्म होता है। अमूर्त होने के कारण इसका आधार स्वर व गति हैं। यही कारण है कि इसमें रस की अनुभूति न होकर भावानुभूति होती है जिसका आधार रस की उपलब्धि ही है।

वस्तुतः लोक गीतों में लोक बसता है। इनमें लोक मानस विद्यमान रहता है लोक दृष्टि की व्यापकता होती है।[1] लोकगीतों की प्रमुखता विशिष्टता और लय होती है और उसमें माटी की गंध होती है। इसीलिए कहा जाता है जब माटी गाती है तो लोक गीत जन्मते हैं। प्रत्येक प्रान्त और जनपद का गीत उसकी लय से पहचाना जाता है यही कारण है कि पंगवाली, चम्बयाली, भरमौरी, लाहुली, किन्नौरी, महासवी, सिरमौरी, कहलूरी, मण्डयाली, कुल्लुई, काँगड़ी लोक गायन अपनी लय भिन्नता से ही पहचाना जाता है। लय की मधुरता, दीर्घता व मादकता ही लोक गीतों को लोक प्रिय बनाती है, उनकी श्रवण प्रियता बढ़ाती है।[2] लोक संगीत में गम्भीर चिन्तन कम रहता है जिसमें स्वर व लय का स्वरूप प्राकृतिक व अपरिष्कृत अवस्था में विद्यमान मिलता है। इसमें भावाभिव्यक्ति तो सहज रूप में होती है परन्तु इसे रस की संज्ञा नहीं दी जा सकती। रस जो भाव सुसंस्कृत का परिष्कृत रूप है उसे लोक संगीत के माध्यम से सरलता से प्राप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि स्थायी भाव तो होता है परन्तु अन्य सहायक भावों की चरम परिणति की सदैव कमी रहती है। अतः इस आलेख में विषय के सन्दर्भ में रस विवेचन की अपेक्षा उनके स्थायी भावों के विविध रूपों का अध्ययन अधिक प्रासंगिक रहेगा।

शोध छात्रा, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली

हिमाचली समतल क्षेत्र का लोक संगीत अत्यन्त भावना प्रधान संगीत है जिसमें करूण भाव का बाहुल्य अधिक है जिसका कारण यहाँ की संस्कृति में विद्यमान दया, दान, वीरता तथा विनम्रता आदि सद्गुण तत्त्व हैं। धर्म भीरू लोग, अनैतिक, अनाचार व दुष्कर्मों से दूर रहने वाले लोग व सदैव संघर्षरत रहने के फलस्वरूप इस संस्कृति में करूणा का बोध पाया जाता है।

इस लोक संगीत में करुणा की अभिव्यक्ति का वर्णन इस प्रकार हैः-

1. करुणा के संगीत का मुख्य आधार ऐसे गीत हैं जो विभिन्न सन्दर्भो में करुणा का बोध कराते हैं। यहाँ के लोक साहित्य ने ऐसे अनगिनत गीत दिये हैं जिनका सीधा सम्बन्ध किसी करुणा पूर्ण घटना से रहा है। इन गीतो में पारिवारिक कलह, सामाजिक शोषण तथा अन्याय आदि विषयों के माध्यम से शोक के भावों की अभिव्यक्ति हुई हैं हिमाचली समतल क्षेत्रों में मृत्यु गीतों की भी परम्परा पाई जाती है जिनको सुनकर हृदय भाव विह्वल हो उठता है।
2. इस क्षेत्र के गीतों में करुणा मूलक भावों की अभिव्यक्ति गान्धार धैवत तथा निषाद स्वरों के परस्पर मेल के कारण अधिक पाई जाती है। यद्यपि यह कोई कठोर नियम नहीं है अपितु गीतों में इन स्वरों की प्रबलता अधिक पाई जाती है।
3. स्वरों का विस्तार क्षेत्र अधिकतर मन्द्र व मध्यम सप्तक रहता है तथा अधिकांश गीत मध्यम सप्तक के पूर्वांग तक विस्तृत रहते हैं। अतः तारता के अभाव में गीतों में गम्भीरता रहती है।
4. शोक के भावों की अभिव्यक्ति के लिये गीतों में मुख्य रूप से पीलू, तिलंग तथा शिवरंजनी आदि रागों के स्वर समुदाय का प्रयोग किया गया मिलता है। मृत्यु गीतों में तिलंग राग की छाया दृष्टव्य मिलती है।
5. शोक के भावों को प्रोत्साहन देने के लिये यहाँ के गीतों में एक स्वर से दूसरे स्वर पर जाने के लिये घसीट का प्रचलन रहता है। इस क्रिया में लोच तथा रंजकता बनी रहती है। जिससे शोक व करुणा के भावों की अभिव्यक्ति सहज हो जाती है। षड़ज से कोमल गान्धार तथा मन्द्र पंचम पर उतरते हुये घसीट का प्रयोग इन भावनाओं को प्रकट करने में सहायक सिद्ध होता है। मोहणा, विहागड़ा, छिंज, छिझोटी तथा मृत्यु गीत शैलियाँ इसके उदाहरण हैं।
6. इस क्षेत्र के गीतों में, हो, हाये, दैया, हो रामा आदि अनेकानेक शब्द?2लापों द्वारा इस लोक संगीत में भावुकता का संचार सहज हो जाता है। ये शब्दालाप जहाँ ताल के आवर्तन को पूर्णता देने का कार्य करते हैं वहीं एकदम हृदय की वेदना को व्यक्त करने में सक्षम हैं यही कारण है कि भावुक वातावरण तैयार करने के लिये इन शब्दालापों का बार-बार इस लोक संगीत में प्रयोग हुआ है।
7. करुणा मूलक गीतों की अभिव्यक्ति में साधारण विलंवित लय का प्रयोग अधिक हुआ है। इस लय के लिये 14 मात्रिक पहाड़ी ताल जिसे चाचर ताल कहा जाता है जिसका सर्वाधिक प्रयोग मिलता है। इसके अतिरिक्त इस संगीत में प्रयुक्त होने वाले अन्य ताल भी धीमी गति में संचालित होते हैं। विछि हुई लय, साधारण लयकारियों से निर्मित गीत, साधारण विलंवित एवं मध्य लय के तालों में गायन वादन तथा नर्तन करना आदि क्रियाओं से इस लोग संगीत में करुणा का भाव संचारित होता है।
8. इस क्षेत्र के लोक संगीत में शहनाई, बाँसुरी, नगारा, ढोलक आदि का प्रयोग बहुतायत होता है। शहनाई व बाँसुरी पर ये गीत स्वतन्त्र रूप से भी बजाये जाते हैं। हर्षोल्लास के अभाव तथा शोक के भावों की प्रबलता के कारण इन गीतों में वाद्य-वृन्द का भी अभाव पाया जाता है। अधिकांश गीत जिनमें मृत्यु गीत भी सम्मिलित हैं अनिबद्ध रूप में बिना वाद्य के गाये जाते हैं।
9. इस क्षेत्र के लोक संगीत में न्यास प्रक्रिया को विशेष महत्त्व दिया जाता है। गीत की अन्तिम

पंक्ति पर अधिकाधिक न्यास रहने से शोकयुक्त भाव एक प्रवाह के रूप में अभिव्यक्ति हो उठते हैं। इसके अतिरिक्त इन गीतों में सा-ग स्वरों की संगति विशेष चमत्कृत रहती है। यह सम्वाद भाव करुणा की अभिव्यक्ति करता है।

रतिभावः-

ये गीत इस क्षेत्र के हर वर्ग के व्यक्ति के लिये विशेष महत्त्व रखते हैं क्योंकि ये गीत भरपूर मनोरंजन प्रदान करते हैं। दिन भर के संघर्ष तथा मेहनत के बाद ग्रामीण लोग अपनी उकताहट तथा श्रम भुलाने के लिये शृंगार रस के गीतों का सहारा लेते हैं। रति भाव संयोग तथा वियोग दोनों दशाओं में हर्ष तथा सुख की अनुभूति प्रदान करता है। इस दृष्टि से संस्कार गीतों व नृत्य गीतों में रति भाव सर्वाधिक पाया जाता है जिनका इस लोक संगीत में एक विस्तृत भण्डार पाया जाता है। यहाँ की बालो, छिंज, छिझोटि आदि गीत शैली में शृंगार के दोनों भावों को स्पष्टतया देखा जा सकता है। संयोग तथा वियोग भावों के लिये इस लोक संगीत में पहाड़ी राग पर आधारित अनेकानेक गीत सुनने को मिलते हैं। पहाड़ी राग की स्वरावलियाँ सदाबहार हैं जो इस लोक संगीत की एक विशेष पहचान बन चुका है तथा इन स्वरावलियों के विविध प्रयोगों से मिलन तथा विरह के सुख-दुःख के मिश्रित भाव व्यक्त हुये हैं। पहाड़ी राग के अतिरिक्त काफी, खमाज, दुर्गा तथा भीमपलासी आदि अनेकानेक रागों में भी शृंगारिक भावों की अभिव्यक्ति पाई जाती है। इन भावों की अभिव्यक्ति से खेमटा, रूपक तथा कहरवा आदि चंचल तालों के सदृश्य तालों का अधिक प्रयोग हुआ है। मध्य से द्रुत लय तक लयकारियों की एक क्रमबद्ध योजना के अनुसार ताल के प्रयोग से एक निरन्तर मिलने वाले आनन्द का बोध मिलता है।

इस संगीत को सुरक्षित रखने व मनोहारी बनाने में हेसी, मिरासी तथा ढाढी जाति के लोगों का प्रमुख हाथ है जो मींड, मूर्की तथा बोल आलापों के कुशल प्रयोग से शृंगारिक भावों की सृष्टि करते है। ये लोग स्वर, लय, ताल के विविध प्रयोगों के साथ विभिन्न लयकारियों तथा सुन्दर सांगीतिक अलंकरणों के माध्यम से संगीत में जीवन्तता स्थापित करते हैं। इसे हर प्रकार से आकर्षक बना देते हैं। बालो, गंगी, नाटी, नैणो आदि गीत शैलियों में तार सप्तक के स्वर विशेष रूप से चमत्कृत रहते हैं। गीत की पंक्ति के अन्तिम भाग में स्वर पर लम्बे अन्तराल के लिये न्यास करना इन गीतों की विशेषता रहती है जो हर्ष व सन्देश के भावों का प्रतीक रहता है। ओये-होये आदि शब्दालाप रंजक वातावरण का निर्माण करते हैं। इस लोक संगीत के अन्तर्गत शृंगारिक भावों की अभिव्यक्ति नृत्य की नाटी, लुड्डी, गिद्धा तथ झमाकड़ा आदि नृत्य शैलियों में बार-बार दृष्टव्य होती है जिनमें शारीरिक मुद्राओं तथा विभिन्न भाव भंगिमाओं द्वारा मिलन, अभिलाषा, प्रवास तथा हर्षोल्लास के भाव व्यक्त किये जाते हैं। गीत तथा नृत्य परस्पर मिलकर अनेक शृंगारिक वातावरण का निर्माण करते हैं इस कार्य की पूर्ति में ढोल, नगारा, शहनाई तथा कई प्रकार के धन व अवनद्ध वाद्य अत्यन्त सहायक होते हैं। रति भाव के गीतों में षड़ज-पंचम तथा षड़ज-मध्यम भाव प्रबल रहता है।

लोक संगीत में उत्साहः-

हिमाचल के समतल क्षेत्रों में ऐसे पर्याप्त गीतों का भण्डार है जो मनुष्य को भय मुक्त करके साहस व वीरता की प्रेरणा देते हैं। ये गीत इतिहास व सामाजिक गीत है जो मनुष्य को विकास की राह पर चलने की प्रेरणा देते है। घटना प्रधान गीत, गुग्गा गीत आदि गीत शैलियाँ जिनमें युद्ध वर्णन, हत्या, अन्याय आदि विषय रहते हैं, साहस के भावों को प्रोत्साहित करते हैं। ढोल और नगारे का संयुक्त प्रयोग एक विशेष लयात्मक वातावरण का निर्माण करता है जिसमें ताल के आघातों को जोरदार ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। इस वातावरण में मनुष्य की धड़कने वाद्य-वृन्द के साथ जुड़ जाती है तथा वीरता की भावनायें उभर कर आती हैं। देवी-देवता के प्रमुख गुर को भी वाद्यों के प्रयोग से एकाग्रचित किया जाता है जिससे उत्तेजना का भाव पैदा होता है। वीरता के भावों को प्रोत्साहित करने में करताल,

नरसिंगा, ताशा तथा अनेक घन वाद्य महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। करनाल वाद्य यन्त्र लय के आघातों के साथ-साथ षड़ज-षड़ज सम्वाद भाव की एक सुन्दर लड़ी भी प्रस्तुत करता है जिससे स्वर व लय का एक समन्वयक रूप परिलक्षित होता है जो वीरता के भावों की स्थापना करता है।

इस लोक संगीत में निर्वेद तथा हास के भावों का प्रमुख आधार इस क्षेत्र का लोक साहित्य है जिसके अन्तर्गत अनेकानेक कहावतों, ढकोसलों, पहेलियों तथा अन्य प्रकीर्ण साहित्य ने इस लोक संगीत को समृद्ध किया है। इस लोक साहित्य ने बांठड़ा, धाजा, भगत, करियाला आदि अनेक लोक नाट्यों को जन्म दिया है लोक संगीत ने इनका सम्वर्धन किया है।

सन्दर्भः-

1. शर्मा गौतम, हिमाचल के लोक गीत, पृष्ठ- 6
2. - तथैव, पृष्ठ- 6
3. सिंह डॉ. बच्चन, आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, पृष्ठ- 83
4. तथैव, पृष्ठ- 84

संगीत शिक्षण में दूरवर्ती शिक्षा की संभावनायें

डॉ. अंजू कुमारी

आने वाले समय में संगीत ही नहीं शिक्षा के हर विषय के लिये दूरस्थ शिक्षण पद्धकत का योगदान कितना अधिक होगा इसका अनुमान हम सहज ही, आज भी दूरस्थ शिक्षण पद्धति के योगदान व महत्व को देख कर, लगा सकते है।

दूरस्थ शिक्षा पद्धति की संभावनाओं को तलाशने के पहले हम एक नजर दूरस्थ शिक्षण द्वारा संगीत विद्या के प्रचार प्रसार पर डालते है।

संगीत का मानव जीवन पर कितना असर पड़ सकता है, जब वनस्पति और पशुओं पर संगीत का कितना अनुकूल और मनोहारी असर पड़ता है, यह बात संसार भर में विभिन्न प्रयोगों द्वारा निश्चित हो चुकी है।

वर्तमान समय से समाज में फैलती जा रही अशांति, असहयोग तथा विवाद की प्रवृति पर यदि किसी माध्यम द्वारा अंकुश लगाया जा सकता है तो वह संगीत का प्रचार व प्रसार ही है, तो जब हम यह मान कर चलते है कि समाज में सामंजस्य व सौहार्द बढ़ाने में संगीत का योगदान बहुत महत्वपूर्ण साबित हो सकता है तो दूरस्थ शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम दिखायी देता है जो सारे संसार में सहजता तथा प्रभावी ढंग से लागू किया जा सकता है यह बात हम जितनी जल्दी समझ लें तथा उसकी कार्यरूप में परिणित कर सकें, हमारे समाज के लिये उतना ही लाभदायक सिद्ध होगा।

अब हम बात करते हैं संगीत शिक्षा में दूरवर्ती शिक्षण पद्धति की संभावनाओं की—आज जब शिक्षा के अनेक क्षेत्र जैसे चिकित्सा, पाकशास्त्र, इन्जीनियरिंग, कम्प्यूटर शिक्षण आदि में दूरस्थ शिक्षा पद्धति का उपयोग सफलता पूर्वक कर रहे है तो संगीत शिक्षण में दूरवर्ती शिक्षा पद्धति का उपयोग क्यों नहीं कर सकते हैं?

यदि हम संगीत शिक्षण के इतिहास पर नजर डालें तो पाते हे कि प्रारम्भ में संगीत शिक्षण बहुत ही सीमित दायरे तथा सीना-ब-सीना होता था यानि गुरू-शिष्य परम्परा, जिसमें शिक्षण कितना कठिन तथा असहयकारी होता था यह हम भली प्रकार समझ सकते हैं यद्यपि इस पद्धति द्वारा जो संगीत निकलता था व ज्ञान व अभ्यास की दृष्टि में बहुत उच्च कोटि का होता था। यह परम्परा बहुत समय तक चली और अब भी कुछ अंशों में विद्यमान है। पिछले 4 दशकों से शिक्षण पद्धति में प्राथमिक तथा उच्च दोनों स्तरों पर विद्यालयों तथा विश्वविद्यालय शिक्षण पद्धति के प्रमुख केन्द्र बन गये हैं विद्यालयों के अतिरिक्त अब दूरस्थ शिक्षण भी समय की आवश्यकता है जो थोड़ी बहुत देर टाली तो जा सकती है पर नकारी नहीं जा सकती। जनसंख्या वृद्धि तथा समाज में बढ़ती शैक्षणिक जागरूकता के कारण दूरस्थ शिक्षण द्वारा ही व्यापक स्तर पर शिक्षण संभव है।

ऐसा नहीं है कि दूरस्थ शिक्षा माध्यम से लाभ ही लाभ है और हानि नहीं है दूरस्थ माध्यम से कुछ समस्याओं का जन्म भी होगा और हो सकता है कि विद्यार्थी के शैक्षणिक स्तर में कुछ कमियाँ रह जायें परन्तु जन मानस के जीवन में संगीत के रचने-बसने के महत्व को देखते हुए हमें अपने दूरस्थ शैक्षणिक

अध्यक्ष, संगीत विभाग, मदन अहिल्या महिला महाविद्यालय, नवगछिया

कार्यक्रम इस तरह बनाने होगें जिससे विद्यार्थियों के शैक्षणिक स्तर में कम से कम गिरावट आयें तथा जिन समस्याओं का विद्यार्थी दूरस्थ माध्यम की वजह से सामना करें उन समस्याओं का निराकरण वह दूरस्थ माध्यम से ही या विद्यालय/विश्वविद्यालय स्तर पर अपने निकटतम गुरू जनों से कर सकें।

यानि वर्तमान शिक्षा प्रणाली तथा दूरस्थ शिक्षा प्रणाली जब एक दूसरे के पूरक बनेगी तो शिक्षा की तो व्यापकता होगी ही साथ ही मानव जीवन में संगीत की रसधार भी बह सकेगी।

यदि हम भारतीय शास्त्रीय संगीत की बात लें तो इसके प्रचार-प्रसार तथा शिक्षण के विश्वव्यापी प्रसार के लिए दूरस्थ शिक्षण ही एकमात्र सशक्त माध्यम दिखायी देता है जिससे हम भारतीय संगीत की सशक्तता तथा महत्ता सारे संसार के सामने सुगमता से रख सकते हैं।

आज भी दूरस्थ शिक्षण संसार द्वारा अपनाया जा रहा है परन्तु जिस व्यापकता से इसकी आवश्यकता है उसमें अभी समय लगेगा। फिर भी यदि हम आँकड़े एकत्र करें तो पायेंगें कि विश्व में लगभग 60 देशों के विश्वविद्यालयों ने दूरस्थ शिक्षण कार्यक्रम को अपनाया है तथा लगभग 10 हजार कोर्स नयी तकनीक से संचालित हो रहे हैं। फिनलैण्ड में दूरस्थ संगीत शिक्षा का नेटवर्क सफलता पूर्वक चल रहा है, भारत के चेन्नई विश्वविद्यालय में 1944 से संगीत में स्नातक पाठ्यक्रम चल रहा है।

दूरस्थ शिक्षा पद्धति के कई माध्यम हो सकते है जैसे-

(1) रेडियो (2) टेलीविजन (3) डाक द्वारा (4) कैसेट (5) सीडी तथा फ्लापी स्लाइडस आदि इसके अतिरिक्त सबसे सशक्त माध्यम इन्टरनेट है जो कम्प्यूटर द्वारा हर समय और कितनी भी गहराई में जाकर प्राप्त किया जा सकता है।

आवश्यकता इस बात की है कि संगीत के क्षेत्र की विभिन्न मूर्धन्य प्रतिभाओं के संरक्षण तथा निर्देशन में शिक्षा विद् इस प्रकार के कार्यक्रम तथा पाठ्यक्रम विभिन्न स्तरों पर बनवायें जो अलग-अलग शैक्षणिक स्तर के लिये अलग-अलग हो तथा उन कार्यक्रमों और पाठ्यक्रमों का नियमित प्रसार हों, नियमित प्रसार हों, यहाँ हमें दो बातें अवश्य ध्यान में रखनी होगीं कि उक्त कार्यक्रमों और पाठ्यक्रमों का नियमित प्रसार हों, नियमित पुनर्मूल्यांकन होता रहे और उसमें आवश्यक सुधार आयें जायें तथा दूसरी बात कि जन सामान्य में संगीत के प्रति रूचि तथा जागृति पैदा हो। इसके लिए हमें सामाजिक राजनैतिक तथा राजकीय स्तर पर प्रयास करने होंगे।

उपरोक्त कार्यक्रमों में एक बात और जो ध्यान में रखनी होगी कि शैक्षणिक काल में जो प्रश्न या समस्यायें विद्यार्थी के सामने आयेंगी उनका निराकरण वह किस प्रकार करेगा।

निष्कर्ष के तौर पर उक्त विषय के संबंध में हम कह सकते हैं कि समय की आवश्यकता तथा संगीत के प्रचार प्रसार के महत्व को देखते हुये यदि दूरस्थ शिक्षण पद्धति में कुछ समस्यायें हैं भी तो, उन समस्याओं की वजह से दूरस्थ शिक्षा के माध्यम को दूर ही रखा जायें, इसके बजाय दूरस्थ शिक्षण पद्धति को अपनाया जायें और समस्याओं या कठिनाईयों के निराकरण के लिये प्रयास करते रहें यहीं उचित प्रतीत होता है।

हमारा भारतीय संगीत इतना प्रबल व सशक्त हैं कि यदि इनका प्रचार व प्रसार विश्व में दूरस्थ शिक्षा माध्यम से हो तो सारा संसार इस ज्ञान को समझेगा तथा इसकी मधुरता तथा शास्त्रीयता से लाभ उठायेगा। यह विश्वव्यापी प्रचार केवल दूरस्थ शिक्षण द्वारा ही संभव है न कि किसी और माध्यम से। व्यक्तिगत तथा विद्यालयी माध्यम से केवल कुछ लोग ही इसका लाभ उठा पा रहें है।

अन्त में अपनी बात मैं समाप्त करते हुये यह कहूँगी की दूरस्थ संगीत शिक्षण की अपार संभावनायें है परन्तु इसके कार्यक्रमों को बनाने में अत्यंत सावधानी तथा गहन विचार विमर्श की आवश्यकता हैं।

संक्षेप में ध्यान रखने योग्य बातें-

1. संगीत के महत्व को जन सामान्य तक पहुँचाने के लिये इसके प्रति जागृत हो ऐसा कार्यक्रम।
2. शिक्षण दो स्तर पर हो एक जन सामान्य के लिये यानि प्रारम्भिक तथा दूसरा जो इस विषय में अधिक ज्ञानर्जन करना चाहते है।
3. कार्यक्रम और पाठ्यक्रम नियमित तथा विभिन्न

माध्यमों द्वारा प्रसारित हों।

4. विद्यार्थी अपनी समस्याओं का निराकरण सुगमता पूर्वक कर सकें।
5. विद्यार्थी अपनी कला का प्रदर्शन विभिन्न माध्यमों से कर सकें।
6. विद्यार्थी अपनी कला का प्रदर्शन नियमित कर सकें।
7. दूरस्थ शिक्षा पद्धति द्वारा शिक्षित विद्यार्थी अपनी समस्यायें विद्यालय विश्वविद्यालय में व्यक्तिगत रूप से जाकर कर सकें।
8. शिक्षा पाये हुये विद्यार्थि यों की परीक्षा नियमित तथा स्तरीय हो जिससे शिक्षा के स्तर में गिरावट न हो पायें।

महाविद्यालय में संगीत के घराने का अस्तित्व

डॉ0 किरण सिंह

परिवर्तन ही प्रकृति का नियम है, बदलाव मनुष्य का स्वभाविक गुण शायद इसलिए समय के अनुसार लोगों की रूचि बदलती गई परिणाम स्वरूप मनुष्यों को घराने की रूढ़िवादी परम्पराओं का निर्वाह करना मुश्किल हो गया और वे विद्यालय महाविद्यालय की ओर उन्मुख होते गये।

प्राचीन काल एवं मध्यकाल में भारतीय संगीत का विकास इसलिए संभव हुआ कि गुरू-शिष्य परंम्परा संगीत शिक्षण में महत्वपूर्ण योगदान देती रही। गायकी के विभिन्न घराने एवं उनकी विशिष्ट गायन-शैलियाँ भी इस गुरू-शिष्य परंम्परा के कारण ही अस्तित्व में आई। जब कोई महान गायक अपनी विशिष्ट गायन शैलियों के कारण आने वाली पीढ़ी के लिए आदर्श बन गया तभी कोई नया घराना अस्तित्व में आया और शाखा-प्रशाखा उनके शिष्य परंम्परा ने विस्तार पाया। सभी घराने में यही बात लागू होती है। घरानों की परम्परा करीब 250-300 साल से अधिक पुरानी नहीं है। डॉ0 मधुवाला सक्सेना ने अपनी पुस्तक ''भारतीय-संगीत शिक्षण प्रणाली एवं उसका वर्त्तमान स्वर'' में घराना शब्द का प्रचार लगभग 150 वर्ष के बीच ही माना है। घराना 18वीं या 19वीं शताब्दी के आस-पास की देन है। प्रायः ऐसे मत सामने आते हैं कि गुरू शिष्य की दरबारों से सम्बद्ध होने पर घराना नाम से प्रचलित हुए। उमेश जोशी की पुस्तक में घरानों का प्रारंभ स्वामी हरिदास जी के प्रोत्साहन से माना जा सकता है। डॉ0 नीलरंजन बनर्जी के अनुसार, घराना मियां तानसेन के समय से प्रचार में आई। पं0 अनूप बनर्जी का मानना है कि घराना का जन्म तभी प्रारंभ हो जाता है जब कोई भी संगीतज्ञ चाहे वो गायक हो, वादक हो अथवा नर्तक अपने पूवर्जों से प्राप्त शिक्षा को अपने अगले पीढ़ी तक पहुँचाते हैं। शिक्षा देने की यही प्रक्रिया घराने को जन्म देती है। इतिहास कहता है कि ख्याल गायकी की शुरूआत सदारंग-अदारंग के जमाने से हुई। उन्होंने अपनी शिष्य को ख्याल गायन की तालीम दी फिर ख्याल गायन प्रारंभ हुआ। जब से ख्याल गायन का प्रचार हुआ उसके बाद से ही घराना शब्द सुनाई देने लगा। कुछ उच्च कोटि के कलाकारों ने एक विशिष्ट सौंदर्य कल्पना निश्चित करके, उनके अनुसार अपनी गायन-शैली अर्थात् गायकी बनायी तथा अपने शिष्यों को उसी ढंग से गायकी सिखाई। यह गायकी सीखते समय शिष्य को आवाज लगाने के तरीके से लेकर मंच प्रदर्शन करने योग्य बनाना एक दीर्घकालीन प्रक्रिया थी और यह तभी संभव था जब शिष्य कुछ सालों तक अपने गुरू के पास ही रहे। ऐसे अनेक शिष्य उस जमाने में गुरूओं के पास रह कर गायकी का विधिवत प्रशिक्षण लेते थे और इसलिए घरानों एवं ख्याल गायकी का प्रचार बहुत अच्छी तरह हुआ।

पूर्व विभागाअध्यक्ष, विश्वविद्यालय संगीत विभाग, तिलका मांझी भागलपुर वि0 वि0, भागलपुर

संगीत, धर्म और साहित्य का परस्पर अन्तर्सम्बन्ध

डॉ राजेश शर्मा

हमारी भारतीय संस्कृति और सभ्यता सारे भारत में बहुत ही प्रसिद्ध है। इसकी प्रसिद्धि का विशेष कारण हमारे यहाँ के सांस्कृतिक मूल्य हैं। जिसमें कई प्रकार के रीति-रिवाज एवं कई प्रकार की कलाएं समाहित हैं। इसी प्रकार अगर हम कलाओं के परिवेश में देखें तो संगीत कला ललित कलाओं में सर्वश्रेष्ठ स्थान रखती है। उसी प्रकार साहित्य का भी ललित कलाओं में विशेष स्थान है और धर्म हमारे दर्शन का मूल आधार है। हमारी भारतीय संस्कृति और सभ्यता मूल रूप से धर्म के स्तम्भ पर ही खड़ी है और अगर गहन दृष्टि से इनके ऊपर दृष्टिपात् किया जाए तो हम ऐतिहासिक पृष्ठों पर संगीत, साहित्य एवम् धर्म के पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध को बहुत सहजता से देख सकते हैं। इन अन्तर्सम्बन्धों को जानने से पूर्व संगीत, साहित्य और धर्म के एकल रूप को जानना अति आवश्यक है, जो निम्न प्रकार है।

संगीत का अर्थः-संगीत कला एक ऐसी कला है, जो केवल व्यक्ति के मन का रंजन ही नहीं करता अपितु ईश्वर से मिलाने का बहुत ही सशक्त माध्यम भी है। ललित कलाओं में अगर देखा जाए तो संगीत का स्थान सबसे उच्च कोटि का माना जाता है। उसका कारण यही है कि संगीत कला बहुत ही विशाल और गहरे अर्थों की धारणी है। संगीत यूँ तो देखने में एक मात्र एक शब्द सा प्रतीत होता है परन्तु यदि इसके अर्थों की परतों को खोला जाए तो उसमें तीन ऐसी विधाओं का मिश्रण है जो अपने आप में एक अनूठी मिसाल रखते हैं। संगीत की उत्पति के बारे में अगर देखा जाए तो हमारे धार्मिक मतों के अनुसार कई मत है जैसे कुछ लोगों का मानना है कि ब्रह्मा ने यह कला महेश को, महेश ने सरस्वती जी को यह कला दी। इसी कारण माँ सरस्वती को स्वरों की देवी व वीणा वादिनी कहा जाता है। सरस्वती से यही कला नारद और उसके बाद स्वर्ग के गांधर्वों को प्राप्त हुई।

''गीतम् वाद्यं च नृत्यम त्रयं संगीतमुच्यते''।[1]

पंडित शारंगदेव जी के मतानुसार संगीत गायन, वादन और नृत्य तीनों कलाओं के मिश्रण को कहा जाता है।

संगीत चिन्तामणि के अनुसार ''संगीत एक व्यापक शब्द है। गीत, वाद्य और नृत्य तीनों मिलकर संगीत कहलाते हैं, जिसमें गीत प्रधान तत्त्व है, वाद्य उसका अनुकारक है और नृत्य उपरंजक है अर्थात् वाद्य गीत का अनुकरण करता है और नृत्य वाद्य का। संगीत शब्द का प्राचीन पर्याय तौर्यत्रिक है।''[2]

पं. अहोबल के अनुसार,

''गीतं वादित्र नृत्यानां त्रयं संगीतमुच्यते।[3]

इस लोक के आधार पर कहा जा सकता है कि संगीत एक ऐसी कलात्मक विद्या है जिसमें गायन, वादन और नृत्य तीनों का लयात्मक रुप से समावेश पाया जाता है।

संगीत सार के अनुसार, ''संगीत गायन-वादन एवं नृत्य के माध्यम से वांछित भाव उत्पन्न करने वाली रचना है। वास्तव में संगीत कला स्वर ताल और लय के संतुलित मिश्रण की मधुर सुरीली रचना

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, गुरू नानक देव विवविद्यालय, अमृतसर

है, जो प्राणिमात्र के चित्त को एकदम आनंदित कर देती है।''[4]

पं. भातखण्डे जी के अनुसार, ''गीत, वाद्य तथा नृत्य - इन तीनों कलाओं का समावेश 'संगीत' शब्द में होता है। वस्तुतः ये तीनों कलाएं स्वतन्त्र हैं, किन्तु गीत प्रधान होने के कारण तीनों का समावेश 'संगीत' में किया जाता है।''[5]

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि संगीत गायन वादन और नृत्य के सुमेल से बनी एक ऐसी रचना है जो व्यक्ति के मन को आनन्दित करती है।

संगीत कला का प्रवाह आरम्भ से ही दो धाराओं में प्रवाहित हुआ है। ये दो धाराऐं मार्गी संगीत और देशी संगीत है।

मार्गी संगीतः- ''मार्ग शब्द 'मार्ग' धातु से है। इसका अर्थ है। खोजा हुआ या रास्ता। मार्गी वह संगीत है जिसका अन्वेषण दर्शन ब्रह्मादि मुनियों ने भगवान शंकर के समक्ष किया।''[6]

प्राचीन काल में जो संगीत गान्धर्वो द्वारा गाया जाता था, उसे मार्गी संगीत कहते हैं। इसमें शास्त्रीय नियमों का पालन होता है। इसलिए यह नियमबद्ध है। इसमें किसी प्रकार का परिवर्तन सम्भव नही है और इसे गाधर्वों द्वारा प्रयोग किया जाता था।

देशी संगीतः- *''देश देश जनानां यद्रुच्यां हदयरभ्जकम। गीतं वादनं च नृतं तछीयते।।*

जो संगीत देश-प्रदेश में लोक-व्यवहार और गायन नृत्य को देशी संगीत कहा जाता है। अर्थात अपने हद्य को प्रसन्न करने वाले गीत, वादन और नृत्य को देशी संगीत कहते हैं।''[7]

देशी संगीत से भाव जिसके माध्यम से मनुष्य अपने मन को प्रसन्न करते हैं और आनन्दमय होकर गाते, बजाते और नाचते है। इसका विकास लोगों के द्वारा कुछ एक परिवर्तन करने से हुआ और जिसका विकसित रुप आज प्रचलित है। जिसे शास्त्रीय और लोक संगीत कहते हैं।

शास्त्रीय संगीतः- शास्त्रों के नियमों पर आधारित संगीत को शास्त्रीय संगीत कहते हैं। इनकी गायन विधाएँ ख्याल द्रुत और विलम्बित, धमार, ध्रुपद, सादरा इत्यादि हैं। इसमें राग या राग निर्माण सम्बन्धी नियम जैसे राग के दस लक्षण, स्वर लगाव, लय परम्परा, गायन शैली, साहित्य द्वारा भावाभिव्यक्ति की जाती है।

उपशास्त्रीय संगीतः- उपशास्त्रीय संगीत को हम भाव-प्रधान शैली भी कह सकते हैं। क्योंकि भावों को व्यक्त करने के लिए शब्दों को भिन्न-भिन्न तरह से गाया जाता है। ''इस संगीत शैली में राग होते हुए भी शास्त्रीय संगीत के समान राग नियमों का कठोरता से पालन नहीं किया जाता है। शब्दों को सौन्दर्यात्मक और भावात्मक बनाने के लिए राग के बाहर के स्वर समुदाय का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया जाता है।''[8]

लोक संगीतः- ''लोक संगीत 'लोक' तथा 'संगीत' इन दो शब्दों के संयोग से बना है। 'लोक' का अर्थ है - जन साधारण और 'संगीत' - गायन, वादन तथा नृत्य का मिश्रित रूप है अर्थात् जो संगीत जन साधारण द्वारा गाया जाये, वह लोक संगीत कहलाता है। लोक संगीत जन-जीवन की उल्लासमय अभिव्यक्ति है।''[9]

सरल संगीतः- इसमें शास्त्रीय नियमों की विशेषता नहीं होती और जन मनोरंजन के लिए इस संगीत को गाया बजाया जाता है। भजन, गजल, गीत, कव्वाली आदि गायन शैलियाँ इसके अन्तर्गत आते हैं। ''वास्तव में सरल संगीत उसे कहना चाहिए, जिसे सुनकर संगीत कला से अनभिज्ञ श्रोता भी आनन्दमग्न हो जाए। सरल संगीत की परिधि में ऐसी प्रत्येक धुन चाहे वह कण्ठ के द्वारा निःसृत हुई हो अथवा किसी साज से उद्भूत हुई हो आती है, जिसे सुनकर अनजान व्यक्ति भी आनन्दित हो उठे।''[10]

धर्म का अर्थः- धर्म का मानव जीवन से एक अटूट सम्बन्ध है। मानवता के विकास-काल से लेकर सर्वदा जीवन में धर्म की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। हर व्यक्ति का झुकाव किसी न किसी धर्म से होता रहा है। धर्म जीवन का सत्य, उन्नायक और सम्पोषक तत्त्व है। हमारी सृष्टि की प्रकृति को निर्धारित करने में धर्म का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

''व्युत्पत्तिपरक दृष्टि से यदि देखा जाए तो 'धर्म' शब्द 'ध ध्ृ' (धारणे) धातु से मन् प्रत्यय

लगाने से निष्पन्न है जिसका अर्थ है- धारण करना- धारयतीति धर्म'।

धर्म की व्युत्पत्ति तीन प्रकार से की जा सकती है।

1. 'ध्रियते लोकः अनेन इति धर्मः अर्थात जिसके द्वारा लोक को धारण किया जाता है, वह धर्म है।
2. 'धारयति लोकम्': जो लोक को धारण करता है, वह धर्म है।
3. 'ध्रियते यः स धर्म': जो दूसरों द्वारा धारण किया जाता है, वह धर्म है।''[11]

धर्म का लक्ष्य विश्व का कल्याण करना है। सत्य ही उसका परम इष्ट है। धर्म न किसी दैवी शक्ति के प्रति प्रतिबद्ध है और न ही किसी मजहबी संगठन और सम्प्रदाय के घेरे में बन्द है। यह किसी प्रकार का बन्धन नहीं बल्कि नियमन है जो मानवता को उसकी पहचान प्रदान करता है।

''धारणाद् धर्मम् इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजा।''[12]

धर्म उसे कहा जाता है जिस पर विश्व की प्रत्येक वस्तु, समाज और मनुष्य जिन नियमों पर आधारित है, ये मनुष्य के अपने भाव और अनुभव है कि वह किस धर्म के प्रति श्रद्धा रखता है। यह अनुभूति किसी प्रकार का भावावेग या मन की कल्पना नहीं है बल्कि पूरे व्यक्त्वि का उन्मुखी भाव है।

समय के परिवर्तन से विभिन्न धर्मों का उद्भव हुआ जिससे भक्ति की विविध धाराओं का भी प्रवाह हुआ। ये धाराऐं एक दूसरे से चाहे भिन्न हैं, परन्तु ईश्वर की भक्ति कर मोक्ष प्राप्त करना ही इसका अंतिम लक्ष्य है।

समस्त सापेक्षिक ज्ञान-विश्व के असीम सत्य के साथ ''व्यक्तिगत आत्मा के एकत्त्व की अनुभूति में समाप्त होता है। परम सत्य विश्वात्मा या ब्रह्म है। यह अनन्त ज्ञानोदधि है। जैसे समस्त नदियाँ सहस्त्रों मील चलकर अन्त में समुद्र को प्राप्त करती हैं, वैसे ही सापेक्षिक ज्ञान के स्त्रोत नाना जन्म रूपात्मक जगत की विभिन्न भूमिकाओं को पाकर अन्त में सच्चिदानन्द स्वरूप अनन्त सिंधु से मिलकर समाप्त होते हैं।''[13]

भारतीय ऋषियों के अनुसार सत्य तो एक है परन्तु उसको समझने तथा प्राप्त करने के लिए मार्ग विभिन्न हैं।

धर्म के रुपः- धर्म के व्यवहारिक रुप से दो रुप है।

(क) सापेक्ष धर्म (ख) निरपेक्ष धर्म

सापेक्ष धर्मः- सापेक्ष धर्म परिवर्तनशील है और इसे विशेष धर्म कहा जाता है। यह स्थिति, स्वभाव, वर्ण, आश्रम, आयु के अनुसार भिन्न होता है। यह देश काल, व्यक्ति की सीमाओं से बद्ध होने के कारण संकीर्ण होता है।

निरपेक्ष धर्मः- यह अपरिवर्तनशील, सनातन और अखण्ड है। यह देश, काल और व्यक्ति की सीमाओं से परे होता है। यह व्यापक, उदार और विश्व कल्याण से युक्त है।

यदि धर्म के मूल सूक्ष्म रुप की ओर ध्यान दिया जाये तो यह सदैव निर्मल, पवित्र एवं अपरिवर्तित रहा है। युग की परिस्थितियाँ बदलती गई और आवश्यकता के अनुरुप धर्म के बाहय स्थूल रुप में परिवर्तन होते गये। समय-समय पर भारत में धर्म से सम्बंधित अनेक परम्पराओं का जन्म हुआ तथापि मध्यकाल में धर्म और सांस्कृतिक चेतना को प्रभावित करने में मुख्य भूमिका निम्न धर्मों की रही।

वैदिक धर्म, शैव धर्म, वैष्णव धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, इस्लाम धर्म, सिक्ख धर्म।

हिन्दु धर्मः- हिन्दु शब्द 'सिन्धु' शब्द का परिवर्तित रूप है अतएव 'सिंधु' शब्द भारत के लिए प्रयुक्त किया जाता था। मध्यकालीन भारत में आने वाले आक्रांताओं द्वारा भारत के लोगों को हिन्दु कहकर संबोधित किया गया तभी से भारत के धर्म को भी सनातन धर्म, आर्य धर्म तथा मानव धर्म के नामों से ही जाना जाता है। हिन्दू धर्म के अंतर्गत प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान मंत्रोच्चारण होता है। हिन्दु धर्म सर्वप्रथम वैदिक धर्म अथवा सनातन धर्म रूप में विकसित हुआ। हिन्दु धर्म की एक अनोखी बात यह है कि इसमें ईश्वर के अनेकों रूपों की पूजा की जाती है। ''भारतीय धर्म चिरन्तन

और सनातन है। वह वैदिक काल से अनेक रूपों में प्रवाहित अजस्त्र स्त्रोत की भाँति चला आ रहा है। 'वेदों ऽखिलों धर्म मूलम्''। वेद भारतीय संस्कृति के मूल आधार है।''[14] वेदों के चार प्रकार हैं। पहला ऋग्वेद है, जिसमें देवताओं की स्तुति का वर्णन है। दूसरा सामवेद है जिसमें मत्रों का स्वरों सहित सुन्दर उच्चारण किया जाता है। तीसरा यजुर्वेद है जिसमें यज्ञों के मंत्रों और यज्ञों का विस्तार वर्णन है। चौथा अथर्ववेद है जिसमें लौकिक जीवन और तंत्र भावना शामिल है। इसमें जादू-टोने, ज्योतिष, चिकित्सा सम्बन्धी मंत्र शामिल है।

हिन्दु धर्म को ईष्टदेव के आधार पर तीन सम्प्रदायों में विभक्त किया गया है जो इस प्रकार हैंः'

शैव सम्प्रदाय

शाक्त सम्प्रदाय

वैष्णव सम्प्रदाय

शैव सम्प्रदायः- शैव संम्प्रदाय का मूल स्वरुप रामायण और महाभारत में स्थिर था। समय के अनुसार शैव धर्म के इन रुपों में विकास होता गया। यह रुप निखरता हुआ वह रुप बना जिसे 'पौराणिक शैव सम्प्रदाय' कहा जाता है। शैव सम्प्रदाय में शिव की अराधना की जाती हे।

''इतिहासविद शिव पूजा को लगभग 8000 साल प्राचीन मानते है। इसके छः सम्प्रदाय ज्ञात हैं। शैव सिद्वान्त, पाशुपत, कश्मीरी शैव सम्प्रदाय, वीर शैव, सिद्ध सिद्वान्त तथा शिव अद्वैत।''[15]

शैव सम्प्रदाय वह धार्मिक संप्रदाय है जिसमें भगवान शिव जी को इष्ट मानकर उनकी आराधना की जाती है। शिव का शाब्दिक अर्थ 'मंगल', 'श्रेयस्कर', 'शुभ', 'कल्याण' आदि है। शिव को विनाश का देवता भी माना जाता है। भगवान शिव नाट्य और संगीत के अधिष्ठाता हैं। 108 प्रकार के नाट्यों की उत्पत्ति शिव से हुई, ऐसा माना जाता है। भगवान शिव स्वयं डमरू बजाकर नृत्य करते थे, भगवान शिव को नटराज भी कहा जाता है। शैव संप्रदाय के लोग भजन कीर्तन के द्वारा शिव की भक्ति करते हैं।

शैव संप्रदाय के लोग शिवलिंग की उपासना करते हैं। ''शिवलिंग उपासना का प्रारंभिक पुरातात्विक साक्ष्य हड़प्पा संस्कृति के आवेशेषों से मिलता है।''[16]

शैव परम्परा प्राचीन काल में दक्षिण भारत में बहुत लोकप्रिय हुई। ऋग्वेद में शैवमत का मूलरूप रूद्र की कल्पना में मिलता है। लंका का राजा रावण जो कि बहुत बड़ा शिव भक्त था, शिव जी की अर्चना करने के पश्चात् गायन तथा नृत्य किया था।

''समर्थयित्वा स निभाचरो जगा प्रसार्य हस्तान्प्रणनर्तवागतः''[17]

शाक्त संप्रदायः- हिन्दुओं के शाक्त संप्रदाय में भगवती दुर्गा की 'शक्ति' के रूप में पूजा की जाती है। पुराणों में दुर्गा को आदिशक्ति भी माना गया है। दुर्गा के कई रूपों की पूजा इस संप्रदाय में की जाती है। पुराणों में दुर्गा को आदिशक्ति भी माना गया है। पार्वती, वैष्णों, गौरी सभी शक्ति के ही रूप हैं। 'गौरी' दुर्गा का मुख्य रूप है जो कि श्वेत वर्ण, शान्तमय तथा सुंदर है। दूसरा रूप जो अति भयानक है वह है काली। देवी दुर्गा युद्ध की देवी है। जिनकी उत्पत्ति राक्षसों का नाश करने के लिए हुई है। शाक्त संप्रदाय के लोग देवी पार्वती को इष्ट मानकर उनकी पूजा 'माँ' के रूप में करते हैं। इस संप्रदाय के लोग माता रानी की चौंकियां लगाते हैं। जिनमें पूरी-पूरी रात भेटों के रूप में माताराानी की महिमा का गुणगान किया जाता है। 'श्री दुर्गा भागवत' देवी दुर्गा से संबंधित एक प्रमुख ग्रंथ है जिसमें 108 देवी पीठों का वर्णन किया गया है तथा संगीतमयी धुनों में पाठ किया जाता है।

माँ के भक्तों में श्रीधर तथा ध्यानु के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। श्रीधर माँ के प्रिय भक्तों में से एक थे। वही पहले ऐसे भक्त थे जिन्होंने माता वैष्णों देवी की गुफा के दर्शन किये थे। कहा जाता है कि ''जिस दिन से भक्त श्रीधर ने स्वप्न में माता के साथ उनके धाम व गुफा के दर्शन किए थे उसी दिन से उन्होंने वैष्णों देवी के साक्षात दरबार की खोज का काम शुरू कर दिया। स्वप्न में देखे मार्ग के अनुसार वह त्रिकुट पर्वत पर

चढ़ते गए। कई बार उन्हें ऐसा लगता कि वह भूल गए हैं, फिर स्वयं ही स्वप्न के दृश्य याद आ जाते और रास्ता दिखाई दे जाता। इस प्रकार खोजते-खोजते उन्होंने एक दिन गुफा का द्वार देख लिया और फिर गुफा में प्रवेश करके, माता के पिण्डी रूप में दर्शन करके जीवन सफल बना लिया।''[18]

वैष्णव सम्प्रदायः- वैष्णव सम्प्रदाय में भगवान विष्णु जी तथा उनके अवतारों श्री राम जी तथा श्री कृष्ण जी की पूजा की जाती है। भगवान विष्णु जी को ब्रह्मा, विष्णु, महेश की त्रिमूर्ति में प्रधान मानकर उनकी पूजा करने वाले वैष्णव कहलाने लगे। भगवान विष्णु के कई अवतार हैं जैसे मतस्य अवतार, कूर्म अवतार, मोहिनी अवतार, वराहावतार, नरसिंहावतार, वामन् अवतार, कृष्णावतार, राम अवतार आदि। जिनमें भगवान् श्री राम तथा श्री कृष्ण जी के अवतार प्रमुख हैं।

भगवान राम जो कि विष्णु जी के दस अवतारों में सातवें हैं, चौबीसवें त्रेतायुग में राजा दशरथ के पुत्र कमलनयन श्री राम के रूप में अयोध्या नगरी में अवतरित माता कौशल्या जी की कोख से जन्में। भगवान राम जी के जीवन एवं पराक्रम का ब्यौरा महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित संस्कृत महाकाव्य 'रामायण' में है। गोस्वामी तुलसीदास जी जो कि भगवान राम जी के श्रेष्ठ भक्तों में से एक हैं। जिन्होंने भक्तिपरक संगीतमयी काव्य रूप 'श्री रामचरितमानस' की रचना की थी।

श्री राम जी के काल में धार्मिक कृत्यों में संगीत का प्रयोग बहुत मह वपूर्ण माना जाता था। ''रामायण के महानायक तथा खलनायक क्रमशः राम और रावण दोनों ही साम संगीत के ज्ञाता थे। इस काल में संगीत साधना पर विशेष बल दिया जाता था। दशरथ, राम, सुग्रीव, हनुमान, लक्ष्मण, भरत, सीता आदि सभी संगीतानुरागी थे। रावण उस युग का महान् विद्वान था। वह संगीत में पारंगत था तथा उसके सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि सुस्वर वेद पाठ प्रणाली का प्रवर्तन रावण ने ही किया था।''[19]

''एक बार अयोध्या में एक बड़े उत्सव का आयोजन हुआ। नगर की गलियां और सड़कें जनता से खचाखच भरी हुई थीं। दिशा-दिशाओं में गायकों और वादकों के संगीत स्वर एवं जनता के आनन्द-प्रेरित कोलाहल के शब्द गूंज रहे थे। जब रावण का वध करके भगवान राम ने अयोध्या में प्रत्यागमन किया तो वहां भरत ने शत्रुघ्न को हठपूर्वक आज्ञा दी कि नगर के सभी देव-स्थानों का पूजन सुगन्धित पुष्पों एवं गायन वादन के साथ किया जाए। तूर्य के साथ होने वाले आभरणों के नाद का उल्लेख निम्नोद्धृत पंक्ति से स्पष्ट होता हैः-

तूर्याभरणनिद्योषः सर्वतः परिनादिताम्।''[20]

श्री कृष्ण जी भगवान विष्णु जी के अवतार हैं। श्री कृष्ण जी का जन्म यदुवंशी क्षत्रिय कुल में राजा वृणी के वंश में हुआ। ''यह अवतार उन्होंने वैवस्वत मन्वन्तर के अद्धाईसवें द्वापर में श्री कृष्ण के रूप में देवकी के गर्भ से मथुरा के कारागर में लिया था।''[21]

श्री कृष्ण जी संगीत के महान् प्रेमी थे। श्री कृष्ण जी की मुरली की धुन सुनकर समस्त गोपियां, पशु, मंत्रमुग्ध होकर अपनी सुध खो बैठते थे। श्री कृष्ण जी के द्वारा मोह विमूढ़ अर्जुन को जो ज्ञान का उपदेश दिया गया था वह आज 'भगवत गीता' के नाम से प्रसिद्ध है। गीता से भाव जो 'गाई गई हो' से है। श्री कृष्ण जी के भक्तों में सूरदास, मीराबाई, चैतन्य महाप्रभु, जयदेव आदि भक्त कवियों के नाम वर्णनीय हैं। जिन्होंने संगीत के माध्यम से भगवान कृष्ण जी की लीलाओं का वर्णन किया। भक्त सूरदास जिन्होंने श्री कृष्ण जी की बाल क्रीड़ाओं तथा प्रेम लीलाओं को संगीतात्मक शब्दावली में रचा तथा गाया। उनकी रचनाओं में राग-रागिनियों का वर्णन मिलता है। भक्त सूरदास की कई रचनाओं में दास्य भावना भी देखने को मिलती है।

''हमारे प्रभु औगुन चित न धरौ।
समदरसी है मान तुम्हारौ, सोई पार करौ।।'[22]

भक्त 'जयदेवकृत 'गीतगोविंद' की अष्टपदियां भी संगीत की दृष्टि से मह वपूर्ण है। विष्णु भक्ति के लिए कहा गया हैः-

''विष्णु नामानि पुष्पानि सुस्वेरे रचितानि चैत।
श्रवंति साम तुल्यानि कीर्तितानि मनीषिभिः ।।1।।'[23]

भगवान विष्णु के अवतार कहे जाने वाले भगवान् राम और भगवान कृष्ण में श्रद्धा रखने वाले वैष्णव कहलाये। वैष्णव धर्म के मूल में व्यापकता और उदारता का भाव निहित है। वैष्णव धर्म का उदय तीन देवताओं 1. वैदिक विष्णु 2. नारायण 3. वासुदेव कृष्ण के सुमेल से हुआ। वैष्णव धर्म की विशेषता यह थी कि जहाँ लोगों की भक्ति भावना में अपने इष्टदेव के प्रति श्रद्धा का भाव और स्तुति थी वहीं उनके प्रति पूर्ण आत्मसर्म्पण कर आत्मिक शक्ति ग्रहण करने का रहस्य भी शामिल था। ''वैष्णव धर्म के अनुसार मोक्ष के लिए तपस्या और वैराग्य का मार्ग आवश्यक नहीं था। उनका आदर्श तो स्वधर्म पालन था।

'स्वधर्मे निधनों श्रेयः परधर्मो भयावह।''[24]

जैन धर्म में भक्ति संगीतः- जैन धर्म में महावीर स्वामी जिनका वास्तविक नाम वर्धमान था, जैन धर्म के सर्वप्रसिद्ध अंतिम तीर्थंकर थे। उन्होंने अपनी दूर-दर्शिता, उच्च आदर्श प्रगतिशीलता तथा उच्च चरित्र के आधार पर जैन धर्म का संगठन एवं प्रचार-प्रसार किया। धार्मिक सभाओं में सामान्य कला, नृत्य एवं संगीत का प्रयोग किया। जैन धर्म के प्रचारकों ने अपने शौक तथा धर्म के प्रचार के लिए संगीत का आश्रय लिया। इस युग में धर्म को संगीत की छत्रछाया में रखकर जनता को अध्यात्मिकता की तरफ प्रेरित किया गया।

''संगीत की धार्मिकता पर बन्धन का आवरण जो पड़ा था वह इस युग में हटा दिया और संगीत पावन साधना करने का अधिकार मानव मात्र को मिल गया। उनको मालूम होने लगा था कि संगीत तो ईश्वरीय उपहार है, सबके लिए है।''[25]

इस धर्म के प्रवर्तक ऋषभ देव माने गए हैं और इनके आगे अन्य तेईस तीर्थकरों ने इस धर्म का विकास किया। कहा जाता है कि तेंईसवें तीर्थकर श्री पार्श्वनाथ हुए, जिनका उपदेश 'चातुर्याम' कहलाता है। जिसका अर्थ चार यमों के प्रति चार व्रत, शपथ ग्रहण करना हैं। अहिंसा, सत्य अस्तेय और अपरिग्रह ये चार यम माने जाते हैं। इसी प्रथा का पालन करते हुए चौबीसवें तीर्थकर भगवान महावीर ने पार्श्वनाथ के चलाए पथ में सुधार किया। उन्होंने चार यमों में एक अन्य व्रत ब्रह्माचार्य सम्मिलत कर 'पच्च महाव्रत' का पालन करने का उपदेश दिया। ''पंच महाव्रत के अन्तर्गत पाँच व्रत रखे जाते हैं - अहिंसा, सत्य अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य।''[26] जैन धर्म में 'तप' को महत्त्व दिया जाता है। ब्रह्मा और आभ्यन्तर दो प्रकार के तप माने गए हैं। इस धर्म की दो शाखाएं श्वेताम्बर और दिगम्बर है।

बौद्ध धर्मः- ''बुद्ध ने चार आर्य-सत्य की चर्चा की है। प्रथम आर्य सत्य है - 'दुःख'। द्वितीय आर्य सत्य के अनुसार दुख का कारण है। तृतीय आर्य सत्य के अनुसार, दुःख-निरोध है। चतुर्थ आर्य-सत्य के अनुसार, 'दुःख-निरोध' का मार्ग सम्भव है।''[27] बौद्ध धर्म के संस्थापक महात्मा बुद्ध ने बिना किसी प्राचीन धर्म की सहायता लिये अपने स्वतन्त्र विचारों के आधार पर अपने आदर्शों की स्थापना की। इन्होंने लोगों को जाति-पाति, ऊँच-नीच, भेद-भाव, यज्ञ-यज्ञादि से ऊपर उठने का उपदेश दिया। इस धर्म में बुद्धिवाद को महत्त्व दिया गया। बौद्ध धर्म भारत की श्रवण परम्परा से निकला हुआ धर्म तथा दर्शन है। भगवान गौतम बुद्ध इस धर्म के संस्थापक हैं। वे राजा शुद्धोदन के पुत्र थे। थेरवान, महायान और वज्रयान बौद्ध धर्म के मुख्य सम्प्रदाय थे। थेरवान सम्प्रदाय जिन्हें 'हीनयान' भी कहा जाता है। महात्मा बुद्ध जी के मौलिक उपदेशों को मानता है। महायान संप्रदाय महात्मा बुद्ध की पूजा करते हैं। महायान भक्ति प्रधान मत है। इस युग में संगीत का दिव्य स्वरूप इसकी अपरिमेय शक्ति बना। बौद्ध मत भी धर्म में मंत्रों के अक्षर तथा ध्वनि की शक्ति में विश्वास रखता था, जोकि संगीत का ही रूप माना जाता था।

बौद्ध काल में बौद्धियों के साहित्य को सांगीतिक धुनों में गाया जाता है। ''गौतम बुद्ध के पावन सिद्धांत ही इस युग के संगीत की आधारशिला बने और जिससे संगीत में नैतिकता का समावेश हुआ। भगवान बुद्ध स्वयं एक उत्तम संगीतज्ञ थे तथा संगीत को ईश्वर की दिव्य आभा के सदृश्य ही पवित्र मानते थे। उन्होंने प्राचीन मंत्रों, आध्यात्मिक

गीतों तथा नृत्य आदि को नीरांजन (आरती) के लिए उपयुक्त मानते हुए संस्कृतिनिष्ठ प्रार्थनाओं के स्थान पर देशी भाषाओं में 'रचित प्रार्थनाओं' के प्रयोग पर बल दिया।''[28]

इस्लाम धर्मः- ''कुरान शरीफ में लिखा है कि ''सच्चा आस्तिक वही है जो एक अल्लाह और उसके पैगम्बर के अतिरिक्त और किसी में विश्वास नहीं करता।''[29]

इस्लाम धर्म के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद साहब हैं। इस्लाम धर्म में ईमान को बहुत महत्त्व दिया जाता है। ईमान के अन्तर्गत अल्लाह में आस्था और पैगम्बर में विश्वास को महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। इस धर्म में किसी प्रकार का भेदभाव न करते हुए 'नमाज' को पूजा जाता है। पैगम्बर का अर्थ-पथ-प्रदर्शक और अल्लाह में आस्था से भाव अल्लाह पर विश्वास से है।

सिक्ख धर्मः- मध्यकाल में गुरु नानक देव जी ने एक ऐसी परम्परा चलाई जिसे वर्तमान समय में सिक्ख धर्म के नाम से जाना जाता है। जिससे एक कीर्तन परम्परा और ईलाही बाणी का अवतरण हुआ। सिक्ख परम्परा में गुरुओं ने संगीत एवं वाणी को आधार बनाकर गुरु ग्रन्थ साहिब की रचना की। पहले गुरु अर्जुन देव और बाद में गुरु गोबिन्द सिंह जी द्वारा इसे सम्पादित किया गया। गुरु ग्रन्थ साहिब में 6 गुरुओं, 4 गुरु सिक्खों, 15 भक्तों और 11 भट्टों की वाणी दर्ज है। इसमें गुरु के महत्त्व को बताते हुए आकाल पुरुष की स्तुति का वर्णन किया गया है। इसमें वहम, भ्रमों, मूर्ति पूजा का खण्डन किया गया है।

गुरूवाणी की एक विशेषता यह भी है कि इसमें शब्द के गायन पर बल नहीं दिया जाता बल्कि शब्द के भाव को समझने पर महत्त्व दिया जाता है। सिक्ख धर्म के पवित्र श्री ग्रन्थ गुरू ग्रन्थ साहिब जी ने प्रभु भक्ति पर जोर देते हुऐ कहा गया हैः

''राम नाम डर मैं गह्यो जाके सम नाहिं कोय।
जहि सिमरत संकट मिटै दरस तिहारो होय।।''[30]

ईसाई धर्म में भक्ति संगीतः- ईसाई धर्म या मसीरी धर्म या मसयहयत विश्व के प्रमुख धर्मों में से एक है तथा इसके ताबईन ईसाई कहलाते हैं। ईसाई धर्म में मसलन कैथोलिक, प्रौटैस्टैंट, आर्थोडोक्स, मॉरोनी, एवनजीलक आदि बहुत से संप्रदाय हैं। बाईबल ईसाईयों का पवित्रतम धर्मग्रन्थ है जिसके दो भाग हैं। पूर्व विधान (ओल्ड टेस्टामैंट) और नवविधान (न्यू टेस्टामेंट)। ईश्वर ने मानव जाति तथा यहूदियों के लिए जो कुछ किया और इसके प्रति मनुष्य की जो प्रतिक्रिया हुई उसका इतिहास और विवरण ही बाईबल का वर्ण्य विषय है। ईसा मसीह (जीसस क्राइस्ट) ईसाई धर्म के प्रवर्तक थे, जिनकी तालीमात पर ईसाई धर्म के पैरोकार अमल करते हैं।

ईसा मसीह का जन्म रोमन साम्राज्य के गेलिलो प्रान्त के नजरथ नामक स्थान पर 6 ई.पू. में हुआ था। उनकी माता का नाम 'माता मेरी' (मरियम) था तथा पिता का नाम जोजेक था जो एक बढ़ई थे। ईसा मसीह के माता-पिता यहूदी थे। ''ईसाई शास्त्रों के अनुसार मेरी को उसके माता-पिता ने देवदासी के रूप में मन्दिर को समर्पित कर दिया था। ईसाई विश्वासों के अनुसार ईसा मसीह के मेरी के गर्भ में आगमन के समय मेरी कुँवारी थी। इसीलिए मेरी को ईसाई धर्मावलंबी 'वर्जिन मेरी' (कुँवारी मेरी) तथा ईसा मसीह को ईश्वरकृत दिव्य पुरूष मानते हैं।

ईसाई धर्म में प्राचीन काल में पुरोहितों व बाजीगरों जो उस काल के संगीतकार हुए, वह अशिक्षित तथा व्यवसायिक प्रतिद्वंदिता के कारण धर्म की परिचर्चा नहीं करते थे, जिस कारण उस समय के ईसाईयों का धार्मिक संगीत अज्ञात है। आज ईसाई धर्म में भक्ति संगीत को चर्च में देखा तथा सुना जाता है।

''चर्च'' ईसाईयों के धार्मिक स्थलों को कहा जाता है। ''चर्च'' शब्द यूनानी विशेषण का अपभ्रंश है जिसका शाब्दिक अर्थ है ''प्रभु का''। वास्तव में चर्च (और गिरजा भी) दो अर्थों में प्रयुक्त है। एक तो प्रभु का भवन अर्थात् गिरजाघर तथा दूसरा ईसाईयों का संगठन।''[31]

ईसाई धर्म में धार्मिक स्थलों के लिए चर्च

शब्द के ईलावा 'कलीसिया' इसका विकृत रूप है। बाईबल में इसका अर्थ किसी स्थान विशेष अथवा विश्व भर के ईसाईयों के समुदाय से है। जो शब्द बाद में गिरिजाघर के लिए भी प्रयुक्त होने लगा।

चर्च में ईसाई धर्म के अनुयायी सामूहिक रूप से ईसा मसीह जी के उपदेशों को संगीत की पाश्चात्य् शैली से गाते हैं।

प्राचीन समय में ईसाईयों को यहूदी कहा जाता था यहूदी एक ऐसा नाम था जो ईसा के अनुयायियों को सीरिया के ऐंटिओक, रोमन साम्राज्य के एक तीसरा शहर में प्रदान किया गया था। यहूदियों ने मन्दिरों तथा यहूदी सभागारों में पूजा अर्चना जारी रखी। पहले पहल ईसाईयों ने अपने संप्रदाय के लिए किसी नए संगीत की सृजन की आवश्यकता महसूस नहीं की। लेकिन अंतिम ब्यारी के अंत में ईसा ने अपने शिष्यों के साथ एक स्तोत्र गाया, जिसे अब यहूदी परम्परा का श्रेय दिया जाता है। इस स्तोत्र का पाठ प्रमुख यहूदी महोत्सव में भी किया जाता है।

''संत पाल ने अपने विश्वासियों को ईश्वर की प्रार्थना संगीत, स्तोत्र तथा भजन के रूप में करने का आग्रह किया था, जो स्वतः धर्म में संगीत के महत्त्व को प्रमाणित करता है।''[32]

संगीत एवं धर्म के अर्थ और रूपों की चर्चा करने के उपरान्त हम कह सकते है कि संगीत का धर्म और साहित्य के साथ अन्तर्सम्बंध है इसलिए तीसरा चरण साहित्य का वर्णन करना अति आवश्यक है क्योंकि कोई भी धर्म हो या संगीत हो साहित्य के बिना धर्म की ओर संगीत की कल्पना करना असम्भव सा प्रतीत होता है हर धर्म का आधार साहित्य रहा है चाहे वो गुरूबाणी की बात हो चाहे रामायण हो, चाहे वो जैन धर्म के सूत्र हो और चाहे वे बौद्ध की शिक्षाएं वह साहित्य के रुप में ही हमारे सामने प्रस्तुत होती है। इसलिए संगीत का साहित्य और धर्म से अन्तर्सम्बन्ध स्पष्ट करने के लिए साहित्य के अर्थ को स्पष्ट करना आवश्यक है।

साहित्य का अर्थः- ''साहित्य'' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत- भाषा के साहित्यम = (सहित ञ्यँ) से मानी गई है।''[33] साहित्य को परिभाषित करने के मुख्यतः तीन आधार हैं जिसमें ''पहला आधार उद्देश्य मूलक है। साहित्य शब्द की व्युत्पति की खोज का आधार भी यही है। स-हित अर्थात 'हित की भावना के सहित ''सहितस्य भावः सहित्य''[34] इसका दूसरा आधार माध्यम मूलक है जिसका भाव शब्द और अर्थ के माध्यम से जो रचना व्यक्त होती है उसे साहित्य कहते हैं। साहित्य को परिभाषित करने का तीसरा आधार विषय वस्तु है। जिसके आधार पर साहित्य एक ऐसा साधन है जिसमें ज्ञान की महान परम्पराओं का वहन किया जाता है।

साहित्य शब्द और अर्थ का सहभाव नहीं अपितु एक ऐसा सहभाव है। जिससे मानव से मानव जुड़ता है।

उपरोक्त परिभाषाओं से यह बात स्पष्ट होती है कि साहित्य केवल शब्द और अर्थ का सम्बन्ध ही नहीं यह विश्व बन्धुत्व एवं भातृत्व की भावना को भी व्यक्त करता है। यह व्यक्ति से व्यक्ति के भाव को भी जोड़ता है क्योंकि व्यक्ति से व्यक्ति के बीच वार्तालाप को समझने की प्रक्रिया साहित्य के बिना अधूरी है।

''साहित्य' शब्द की व्युत्पत्ति 'सहित' से मानी गई है।''[35] जिसका अर्थ साथ, संग आदि से है। यह भी कहा जा सकता है कि सहित का भाववाचक रुप ही साहित्य है। ''व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'साहित्य' शब्द का अर्थ है-साहचर्य।''[36]

अतः कहा जा सकता है कि साहित्य एक ऐसी सौन्दर्य और आकर्षक रचना है, जिसका माध्यम भाषा है और जिसके अर्थ-बोध से एक सामान्य व्यक्ति को भी आनन्द की अनुभूति प्राप्त होती है। साहित्य एक ऐसी रचना है, जो शब्द और अर्थ से परिपूर्ण भावोभिव्यक्ति करने वाली और अलंकारों से युक्त एक सौन्दर्य उत्पन्न करती है।

साहित्य का मूल वैदिक साहित्य है। साहित्य का विकास हमारे प्राचीन वेदों से माना जा सकता है। संसार का प्राचीन प्रलेख ऋग्वेद माना गया है। वेदों के द्वारा ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त होता है। सृष्टि के आरम्भ से इनका विकास माना जाता है।

''वेद को 'निगम' 'अर्थ बोधक' भी कहा जाता

है क्योंकि यह साभिप्राय, सुसंगत और उत्तम अर्थ निर्दिष्ट करता है।''[37]

वैदिक दृष्टिकोण से वेद चार प्रकार के माने गए हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। सर्वप्रथम स्वरुप तीन वेद ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद थे। इसके पश्चात इसमें अथर्ववेद को भी शामिल कर दिया गया है। ऋग्वेद में पद्यों का संग्रह है। देवताओं की स्तुति पद्य रुप में लिखित है। सामवेद में मंत्रों का उच्चारण गायन रुप में विद्यमान है। गीतों, भजनों का वर्णन किया गया है। यजुर्वेद में गद्य रचना संग्रहित है, जिसमें यज्ञों के मत्रों का वर्णन है। अथर्ववेद में गद्य और पद्य दोनों का संग्रह है।

अतः कहा जा सकता है कि मनुष्य एक मननशील प्राणी है, उसका हृदय अनेक प्रकार के भावों का निरन्तर बहने वाला प्रवाह है। इन भावों की अभिव्यक्ति के लिए अनेक कलाओं का जन्म हुआ। जिनमें सर्वश्रेष्ठ कला साहित्य है।

यदि गूढ़ दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह बात स्पष्ट होती है कि कोई भी धर्म, साहित्य और संगीत के बिना अधूरा है। चाहे वे हिन्दु धर्म की वैदिक ऋचाएँ या मन्दिरों में आरती, स्तुति, भजन की बात की जाए चाहे मुस्लिम धर्म की परम्परा में कव्वाली की बात की जाए तो या फिर सिक्ख धर्म में बाणी, शब्द, कीर्तन की बात हो, हर एक धर्म में साहित्य या ईलाही बाणी को, ऋषियों मुनियों की शिक्षाओं, शब्दों, वाक्यों को संगीत का जामा ओढ़ा कर ही ईश्वर की प्राप्ति का माध्यम बनाया गया है। जिससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कोई भी धर्म संगीत और साहित्य के बिना अधूरा है।

संगीत और धर्म का अन्तर्सम्बन्धः- मनुष्य आदि काल से ही धर्म से प्रेरित रहा है। मानव जीवन के तीन शाश्वत मूल्य-सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् धर्म के मुख्य आधार स्तम्भ हैं। भारत में कई धर्म पल्लवित हुए और कई धर्मों का जन्म हुआ। प्राचीन काल से कई धर्म चलते आ रहे हैं। भारतीय संगीत की आधार शिला आध्यात्मिक है जिस कारण सदैव से ही संगीत का सम्बन्ध धर्म से रहा है। हमारे भारतीय धर्मों में भक्ति मार्ग अपनाने के लिए संगीत को सर्वोत्म साधन माना गया है।

हिन्दुओं के सनातन धर्म के वेदों में संगीत को उच्चकोटि का माना गया है। इन वेदों में सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में सामवेद को ईश्वर का रुप मानते हैं।

''वेदानां सामवेदोऽस्मि''।[38]

इसमें वेदों की ऋचाओं का गायन किया जाता है और इसमें संगीतमय मंत्रों, छन्दों आदि का समावेश है। यहाँ देवी देवताओं की स्तुति भी संगीत में प्रयुक्त गायन, वादन और नृत्य विधाओं द्वारा की गई है। सामवेद में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के आधार पर सम्पूर्ण गायन किया गया है। जो कि धर्म और संगीत के अर्थ को स्पष्ट करता है। इसी के साथ 18 पुराणों में जिनमें धर्म को संगीत से जोड़ कर गुणगान किया गया है। रामायण या रामचरितमानस की ओर ध्यान दिया जाए तो रामायण काल में घण्टा भेरी, दुन्दुभि मृदंग, घट, डिडिम, वीणा वाद्यों का प्रयोग अनेक रागों के साथ किया जाता रहा।

महाभारत काल पूजा, अराधना, धर्म और भक्ति से ओतप्रोत युग था जिसमें इस समय के उपासकों द्वारा गायन, नृत्य, वादन किया जाता रहा है जो कि धर्म और संगीत के सम्बन्ध का श्रेष्ठ उदाहरण है। श्रीमद्भागवत गीता में भी भक्ति मार्ग को मान्यता देते हुए श्री कृष्ण ने मोक्ष प्राप्ति का साधन भक्ति संगीत ही बताया है। श्री कृष्ण ने धार्मिक उपदेश को श्लोको और दोहों के माध्यम से गेय रूप में व्यक्त किया है।

इस प्रकार धर्म और संगीत के समन्वय को स्पष्ट करता है।

इसके अतिरिक्त वैष्णव मत में राम, कृष्ण के उपासकों ने भी संगीत को माध्यम बनाकर अपने अराध्य देव का गुणगान किया है।

शाक्तमत में शक्ति देवी के भजनों का जागरण होता है जिसमें संगीत की तीनों विधाओं गायन, वादन और नृत्य का समावेश कर जागरण किया जाता है। इस प्रकार धर्म और संगीत का रुप हमारे समक्ष प्रकट होता है।

इसी प्रकार जैन धर्म का संगीत से सम्बन्ध

दर्शाते हुए कहा जा सकता है कि इस धर्म के प्रवर्तक ऋषभ देव और अन्य चौबीस तींर्थकरों ने अपने धर्म का विकास सांगीतिक भाव से किया। इन्होंने धार्मिक संगीत में कई वाद्यों मृदंग, वीणा, दुंदुभि, ढफ का प्रयोग और रागों और गायन शैलियों का प्रयोग करुणामय धार्मिक भावना को उजागर करने के लिए किया।

''ततो मंगल गीतेन समुदांत नमस्ततम।
तूर्यनादस्य विच्छेदे शब्दात्मकमिवा भवत्।।''[39]

अर्थात जैन धर्म संगीत में प्रत्येक उत्सव पर मंगल गीत गाने की प्रथा रही है, जिनके साथ तूर्य, वीणादि वाद्यों का प्रयोग भी होता है। इन मंगल गीतों से आकाश गूंजता हैं। जिससे स्पष्ट होता है कि जैन धर्म में भी संगीत पूर्ण भक्ति भाव से विकसित हुआ।

''संगीत की धार्मिकता पर बन्धन का आवरण जो पड़ा था वह इस युग में हटा दिया और संगीत पावन साधना करने का अधिकार मानव मात्र को मिल गया। उनको मालूम होने लगा था कि संगीत तो ईश्वरीय उपहार है, सबके लिए है।''[40]

जैन धर्म से संबंधित मंदिरों, चैर्चो व मठों आदि में धार्मिक अनुष्ठानों में संगीत की महत्त्ता को दर्शाते हुऐ बताया गया है। संगीत का आयोजन विशुद्धतः स्तुति, स्त्रोत, पूजा-अर्चना, प्रतिष्ठा-कल्याण, स्थोत्सव, अटटाहिका आदि महोत्सवों के अवसरों पर धार्मिक परिप्रेम में ही होता था। जैन मंदिरों में आज भी संगीतात्मक स्त्रोत एवं पूजा पाठ में संगीत का प्रयोग प्रचुर मात्र में होता है। संगीत भक्ति-विह्वल भक्त के हृदय की एक साधना है।

बौद्ध धर्म के भिक्षुकों ने भी अपने धार्मिक संगीत के विकास के लिए कई प्रकार के रागों, वाद्यों, वीणा, भेरी, मृदंग का प्रयोग किया। इन्होंने महात्मा बुद्ध के पावन विचारों और मन्त्रों का संगीतमय उच्चारण किया।

सूफी धर्म में भी संगीत का प्रचार अध्यात्मिक अलौकिक प्रेम प्रधान गजल, कव्वाली, ख्याल, कौल, कलाम, नकशगुल, कल्बाना, तराना गायन शैलियों के माध्यम से हुआ। इसमें खुदा की बन्दगी, उनके आदेशों, खुदा की इबादत, सांगीतिक भाव निहित कर और उसे भिन्न-भिन्न रागों, तालों में बाँधकर सूफी संगीत का प्रचार किया गया। 'इश्के हकीकी' ईश्वरीय प्रेम को सूफी संतों ने संगीत की लड़ी में पिरो कर धर्म और संगीत का अनूठा समन्वय दर्शाया है।

''सूफियों, भक्तों और धर्म-प्रेमियों के संगीतमय प्रवचनों द्वारा भारतीय संगीत क्रमश उच्चतर स्थिति को प्राप्त हो रहा था।''[41]

इसी के साथ मध्य काल में एक नया धर्म पल्लवित हुआ, जिसे सिक्ख धर्म कहा जाता है। जिसमें कीर्तन, चौंकी गुरबाणी, आसा दी वार कीर्तन परम्परा निरन्तर चलती है। सिक्ख धर्म में 'बाणी' जो कि आध्यात्मिक के साथ-साथ पूर्ण रुप से संगीतमय है।

गुरुमत परम्परा में सिक्ख गुरुओं, भक्तों ने अपनी बाणी को आधार बनाकर गुरुमत परम्परा, सिद्धान्तों, उपदेशों को संगीत के माध्यम से प्रचार किया है। इन्होंने 31 रागों, वाद्यों जैसे रबाब, सारिंदा, तबला का प्रयोग अपनी बाणी को अधिक भावुक, करुण बनाने के लिए किया है। गुरुमत संगीत परम्परा भी धर्म और संगीत के समन्वय को दर्शाने का श्रेष्ठ माध्यम है। सिक्ख धर्म में इस प्रकार बाणी कीर्तन अपने हद्य की धार्मिक भावनाओं को उजागर करने का सशक्त माध्यम रही है। धर्म को संगीत के माध्यम से प्रचार में लाने का श्रेय वल्लभ सम्प्रदाय में अष्टछाप भक्तों सूरदास, नन्ददास कुम्भनदास परमानन्ददास, चतुर्भुज दास, कृष्णदास, गोविन्द स्वामी, छीत स्वामी को भी प्राप्त होता है। इन सभी भक्त संगीतज्ञों ने कृष्ण भक्ति का संगीत के माध्यम से प्रचार किया है। आपने अपने पदों को अनेक रागों श्री, धनाश्री, रामकली, भैरव, नट आदि का प्रयोग कर इन्हें लय ताल में बाँधकर प्रयोग किया है और अपने करुण, भक्तिमय भावों को दर्शाया है।

मीरा बाई जिन्होंने अपनी सारी भक्ति भावना को संगीत के माध्यम से व्यक्त कर संगीत और धर्म के समन्वय का अनूठा श्रेष्ठ उदाहरण दिया है। इन्होंने अपने गीतों, भजनों के माध्यम से श्री

कृष्ण के समक्ष अपने प्रेम को व्यक्त किया है।

''म्यारां री गिरधर गोपाल दूसरा णां कूयां।''[42]

मीराबाई जी ने संगीत के तीनों प्रकार गायन, वादन, नृत्य का प्रयोग कर और विभिन्न तालों, गायन शैलियों का विकास कृष्ण भक्ति के द्वारा किया।

ईसाई धर्म में भी धर्म को संगीत के माध्यम से प्रचार में लाया जाता है। ईसाई धर्म के उपासकों ने भी बाईबल के उपदेशों, भजनों, को सामूहिक, रुप में गायन कर अपनी धार्मिक भावनाओं को गिरिजाघरों में उजागर किया है। इस धर्म के वाद्यों में प्रमुख 'घण्टा' वाद्य का प्रयोग किया जाता है जो कि इस धर्म की धार्मिक भावना को उजागर करने में विशेष योगदान देता है।

हर धर्म की धार्मिक परम्पराओं का संगीत के साथ गहरा सम्बन्ध रहा है और इन परम्पराओं को उजागर करने में संगीत का विशेष स्थान है।

अतः कहा जा सकता है कि अपने हद्य की धार्मिक भावनाओं को सुरीले ढंग से प्रकट करने की समर्थ संगीत में ही है।

संगीत और साहित्य का अन्तर्सम्बन्धः-

संगीत और साहित्य का सम्बन्ध चोली दामन का सम्बन्ध है। संगीत शब्द अपने आप में साहित्य को परिभाषित करता है। क्योंकि 'सम' 'गीत' यह साहित्य की संज्ञाएं हैं और शब्द, वर्ण, अलंकार साहित्य के ही अन्तर्गत आते है। चूंकि संगीत ओर साहित्य का गहरा सम्बन्ध है और अगर साहित्य की ओर ध्यान दिया जाए तो साहित्य में संगीत छिपा है। जैसे अ, आ, ई, ऊ जिसे व्यंजनों के नाम से जाना जाता है परन्तु सांगीतिक दृष्टि से इन्हीं व्यंजनों को स्वर कहा जाता है। क्योंकि एक शब्द के एक स्वर से दूसरे स्वर के बीच के अन्तराल को संगीत ही कहा गया है। साहित्यिक दृष्टि से संगीत का प्रयोग तीन रूपों गायन, वादन और नृत्य में किया जाता है। साहित्यिक दृष्टिकोण से गायन वादन और नृत्य में गीतों के शब्दों और लय ताल के बोल किट, धा, धिं धिर ना आदि साहित्यिक रूप को ही दर्शाते हैं।

52 इसी प्रकार ताल में तबले के बोल जैसे तिट, धा, धि भी और सितार के बोल दारा, दिर दिर दा साहित्य के अन्तर्गत आते है। गायन संगीत में भी स्वर ताल लय शब्द और वादन में साज़ों के बोल दारा, दा, साहित्य के गुण उद्योतर है। अगर संगीत और साहित्य की बात की जाए चाहे वह भजन है या वैदिक ऋचाएं या गुरबाणी के शब्द ये सभी साहित्य का ही रूप है। क्योंकि इनके बोल साहित्य रचना के आधार है।

जब संगीत में शास्त्रीय संगीत को गाया जाता है तो उनमें रागों की बन्दिशें साहित्यिक ही है। संगीत में रसोत्पत्ति भाव के लिए साहित्य एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। इसी प्रकार लोकगीतों में भी अपने-अपने प्रान्तों की भाषा के माध्यम से संगीत का विकास होता है। सामवेद के द्विविध ग्रन्थों के अन्तर्गत आर्चिक ग्रन्थ में साहित्य और गान ग्रन्थ में स्वरमय स्वरों का वर्णन है। गान ग्रन्थों में स्वर लिपि और साहित्यिक शब्दावलियों का प्रयोग किया गया है। वैदिक काल में भी सभी वेदों में संगीत को उच्चकोटि का दर्शाते हुए लोकों ऋचाओं को गेय रुप में रचा गया है। विशेषतया सामवेद संगीत की दृष्टि से महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें सांगीतिक शब्दावलियों का प्रयोग लोको, मंत्रों के साथ कर एक उच्चकोटि की साहित्य रचना की गई है। जो विशेष करुणामय, भावुक रस निष्पत्ति में सहायक है। इस प्रकार सामगान के इन ग्रन्थों में स्वरलिपि और साहित्यिक शब्दावलियों का प्रयोग कर संगीत और साहित्य के समन्वय को स्पष्ट किया गया है।

इसी प्रकार पुराणों की साहित्यिक रचना में कुछ संगीतमय पुराणों जैसे वायुपुराण, जिसमें साम गायन को श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। मार्कण्डेयपुराण, विष्णु धर्मोतर पुराण, हरिवंश पुराण आदि में देवी-देवताओं का गुणगान विभिन्न गायन शैलियों आदि के साथ किया गया है।

गीतों में भी लोक बद्ध, छन्द बद्ध और ताल बद्ध होने के कारण उच्चकोटि की साहित्यिक रचनाओं को रचा गया है।

इसी प्रकार हिन्दु काल की वाल्मिकी रामायण, तुलसीदासकृत रामचरितमानस में लयात्मक रुप से

सांगीतिक शब्दावलियों, गायन शैलियों का प्रयोग करते हुए उच्चकोटि का साहित्य रचा गया है।

तुलसीदास जी कृत साहित्य रचनाओं का आधार सांगीतिक है क्योंकि इन्होंने दोहावली, कवित्त रामायण, कवितावली, गीतावली, श्री कृष्ण गीतावली आदि रचनाओं में श्रृंगारिकता का रसोत्पाद करने के लिए राग-रागनियों, तालों गायनशैलियों आदि का प्रयोग किया है और सांगीतिक भाव दर्शाया है।

मीरा बाई जी ने संगीत में प्रवीण होने के कारण अपनी साहित्यिक रचनाओं में संगीत के मधुर स्वरों का प्रयोग कर अपने साहित्य को पूर्णतया संगीत से जोडा है। उनके अधिकतर पद श्रृंगारिकता उत्पन्न करने वाले हैं। आपने अपनी रचनाओं में साहित्यिक तत्वों के साथ सांगीतिक शब्दावलियों का प्रयोग किया है। आपकी रचनाओं में श्री कृष्ण के प्रति संयोग वियोग दोनों का वर्णन है।

अर्थात आपके पदों में गायन का निकटतम रुप झंकृतत होता है। मीरा बाई ने राग-रागनियों, तालों के साथ-साथ नृत्य को भी अपने साहित्य में स्थान दिया। मध्यकाल में गुरुबाणी की बात की जाए तो सारी वाणी का संकलन 'आदि ग्रन्थ' में किया गया है। जिसमें 6 गुरुओं, 15 भक्तों, 11 भटटों और 4 गुरु सिक्खों की वाणी संकलित है। गुरुवाणी संगीत जो कि आदि ग्रन्थ में संकलित है। इसमें साहित्य और संगीत का एक विशेष सुमेल देखने को मिलता है। क्योंकि सम्पूर्ण गुरुवाणी को 31 रागों और उसके अलग-अलग प्रकारों के साथ रबाब तबला वाद्यों का वर्णन किया गया है। इसी के साथ दशम ग्रन्थ में भी ध्रुपद, धमार, होरी गायन शैलियों का उल्लेख किया गया है और अनेक प्रकार की तालों, वाद्यों का प्रयोग किया गया है। जो कि सिक्ख परम्परा के साहित्य और संगीत के पारस्परिक सम्बन्ध को दर्शाता है।

इसी समय पुष्टिमार्गीय परम्परा सम्प्रदाय की स्थापना श्री वल्लभाचार्य जी द्वारा की गई जिनमें इन आठ कवियों के द्वारा संगीतमय पदों की रचनाओं का संग्रह प्राप्त होता है। आपने ध्रुपद शैली, राग भैरव, विभास, बिलावल रामकली गौरी नट पूर्वी आदि रागों का प्रयोग अपनी रचनाओं के लिए किया। ''अष्टछाप के कृष्ण भक्त कवियों ने भारतीय काव्य के विकास एवं संगीत की अनवरत धारा प्रवाहित की। जो तत्कालीन गायकों के लिए भी एक प्रकार से वरदान सिद्ध हुई।''[43]

इस प्रकार इन कवियों ने संगीत और साहित्य में समन्वय स्थापित कर अपने काव्य में छन्दबद्ध भाषा और अलंकारों के प्रयोग के साथ साहित्यिक भाषा का प्रमाण दिया है वहीं अपने काव्य में प्रयुक्त साहित्यिक भाषा के साथ रागों, गायन शैलियों, तालों का प्रयोग कर साहित्य और संगीत के आपसी सम्बन्ध को स्पष्ट किया है।

इसी के साथ सूरदास जी ने संगीत के आधार पर ग्रन्थ लिखकर संगीत और साहित्य को समृद्ध किया। जिसमें सूरदास जी ने अपने सांगीतिक ग्रन्थ सूरसागर, सूर सारावली, और साहित्य लहरी की रचना कर सांगीतिक शब्दावली को उद्घाटित किया।

''सूरदास जी'' गोचारण -रागबिलावलपदः- धेनू चरावन चले श्याम घन ग्वाल मंडली जोर गोवर्धन पर बेनू बजावत फूलन वेश सबाँरत''[44]

सूफियों ने भारतीय संगीत में प्रचलित संस्कृत और प्रांजल गायन शैलियों (प्रणालियों) में संगीत के शास्त्रिय पक्ष को समझकर अरबी-फारसी सांगीतिक भाषा का सम्मिश्रण किया और कौल, कलाम, नक्श-निगार, नक्श-गुल, तराना, कव्वाली, तराना, ख्याल आदि गायन विधाओं का चित्रण अपने ग्रन्थों में किया। सूफियों के दो मतों में से संगीत को मानने वाले अनुयायियों ने जैसे शेख फरीद आदि ने अपने साहित्य रचना में भाव और रस निष्पत्ति के लिए सांगीतिक शब्दावलियों का प्रयोग करके संगीत और साहित्य के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्ट किया है। कव्वाली सूफियों की विशेष गायकी है, जिसके अन्तर्गत अमीर खुसरों ने नवीन शैलियां बनायी जो कि कौल कल्लाना, नकश-गुल के नाम से प्रसिद्ध है।

कव्वाली गीत अमीर खुसरों :-

1. ए माँ रंग दे, मोहे अपने ही रंग में रंग ले निजाम पिया।
2. छाप तिलक सब छीनी रे मोसे नैना मिलाइ

के।

3. मैं निज़ाम से नैना लगाइ आई रे।

काफी-दादरा ताल, शाह हुसैन,
दर्द बिछोडे दा हाल नी मैं कैनूं आखां।

जैन साहित्य में भी सांगीतिक शब्दावालियों का प्रयोग कर विशेष साहित्य में बारहमासा, रागमाला, रास ग्रन्थ आदि की रचना की गई। जिसमें रास गायन, श्रुति स्वर, ग्राम मूर्च्छना का वर्णन है।

जैन ग्रन्थों में गीति तत्वों के साथ संगीत के मधुर स्वरों का प्रयोग रस निष्पत्ति के लिए किया गया है जिससे संगीत और साहित्य का सम्बन्ध स्पष्ट होता है।

बौद्ध साहित्य में भी संगीत के वैदिक और लौकिक पक्षों, सामवेद की शिक्षाओं, गान्धर्वों का वर्णन किया गया है। विशेषता 'थेरी गाथा' नामक ग्रन्थ में 522 गीतों को ताल और रागों सहित रचा गया है।

ईसाई धर्म में भी अपने पैगम्बरों और यीशू मसीह की स्तुति,. शिक्षाओं को जहाँ साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि का रचा गया वहीं सांगीतिक रुप में कई धुने बनाकर गायन करने की परम्परा है, जो संगीत और साहित्य के पारस्परिक सम्बन्ध को ईसाई धर्म में भी प्रदर्शित करती है।

धर्म और साहित्य का अन्तर्सम्बन्धः-

साहित्य का सम्बन्ध प्राचीन परम्पराओं से होता है और प्राचीन परम्पराएं सदैव धार्मिक होती हैं। ऐसा कहा जा सकता है कि साहित्य हमेशा धर्म से प्रेरित रहा है। क्योंकि साहित्य ने प्राचीन धार्मिक परम्पराओं, विषयों को समेट कर रखा है।

धर्म और साहित्य का सम्बन्ध प्राचीन वेदों से ही आरम्भ होता है। वेद भारतीय संस्कृति के मूल आधार है।

'वेदोऽ खिलो धर्म मूलम'[45]

ऋषियों मुनियों के मन में जो चिंतन भगवान के दर्शन रुपी ज्ञान की रश्मियाँ अवतीर्ण हुई। उन्होंने उन्हें शब्दों वेदों के मंत्रों और सूत्रों के माध्यम से वेदों में रचा। जिसमें देवों, मंत्रों, यज्ञों का वर्णन किया गया है।

इसी प्रकार पौराणिक धार्मिक साहित्यों के अन्तर्गत 18 पुराणों का उल्लेख है जिसमें प्राचीन साहित्य और विश्व रचना का इतिहास धार्मिक रुप में किया गया है। यहाँ पौराणिक धार्मिक साहित्य का अर्थ इसी कथन से स्पष्ट होता है कि पुराणों के रचयिता ब्रह्मा जी हैं।

''पुराण अर्थात प्राचीन साहित्य से यहाँ अभिप्रेत है, प्राचीन कथानक, वंशावली, इतिहास, पुरातन, ज्ञान-विज्ञान आदि के घोतक ग्रन्थ''[46] जिससे ज्ञात होता है कि पुराण पूर्व परम्पराओं को दर्शाता है। जिसका सम्बन्ध धार्मिक परम्पराओं से है।

इसी के उपरान्त श्री मद् भागवत गीता में श्री कृष्ण भगवान के उपदेशों को श्लोकों, दोहों के माध्यम से लिखा गया है जिसका मूल उद्देश्य धार्मिक परम्परा को स्पष्ट करना है।

भगवद के इस श्लोक के माध्यम से यह संदेश मिलता है कि जो मनुष्य भक्तिमार्ग को स्वीकारता है, वह वेदों का अध्ययन, तपस्या, दान, सकाम कर्म करने से प्राप्त होने वाले अच्छे फलों को प्राप्त करता है। भक्ति द्वारा समस्त फलों को प्राप्त कर अन्त में परमधाम प्राप्त करता है।

वाल्मीकिकृतः रामायण और तुलसीदास कृत रामचरितमानस श्रेष्ठ महाकाव्य है जिसमें साहित्यिक भाषा अवधी, संस्कृत, हिन्दी और अलंकारों, आदि का प्रयोग कर श्री राम लीला के माध्यम से धार्मिक भाव, रस को स्पष्ट किया गया है। ये सभी महाकाव्य धार्मिक साहित्यिक रचना के स्पष्ट उदाहरण है।

मध्यकाल में अष्टछाप सम्प्रदाय द्वारा रचित साहित्यिक रचनाएं जैसे तुलसीकृत (बरवै रामायण, हनुमान चालीसा जानकी मंगल) सूरदास कृत (सूरसारावली, साहित्य लहरी, सूरसागर) कुम्भन दास, कृष्णदास, नन्ददास, चतुर्भुजदास, गोविन्द स्वामी, छीतस्वामी इन सभी की रचनाओं का आधार श्री कृष्ण, महिमा उनका यशोगान, बाल लीलाएं आदि हैं। इन्हें पूर्ण भक्तिभाव से दर्शाकर अपनी साहित्य रचना की है।

मीरा बाई जिन्हें एक कृष्ण दीवानी कहा जाता है उनकीं रचनाओं में श्री कृष्ण के संयोग-वियोग

सभी विषयों का भक्तिपूर्वक विवरण मिलता है। इन्होंने उच्च साहित्यिक भाषा, अलंकारों का प्रयोग कर अपनी भक्ति भावपूर्ण रचनाओं का श्रेष्ठ उदाहरण दिया है।

धार्मिक साहित्यिक रचनाओं का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण सिक्ख परम्परा के 'आदि ग्रन्थ' में भी दृष्टिगोचर होता है और 'दशम ग्रन्थ' सिक्ख धर्म के पवित्र ग्रन्थ 'गुरु ग्रन्थ साहिब' जी में गुरुओं की वाणियों, उपदेशों का सकंलन किया गया है। जिसका उद्देश्य धर्म सम्बन्धी, ज्ञान, उपदेश के माध्यम से लोगों की धार्मिक भावनाओं को उजागर करना है।

इसमें 6 गुरुओं, 15 भक्तों, 11 भट्टों और 4 गुरु सिक्खों की वाणी का संकलन किया गया है। गुरु ग्रन्थ साहिब में वाणी का संकलन लोक मुहावरे, अवधी ब्रज भाषाओं का प्रयोग उच्च वर्णों, अलंकारों का प्रयोग कर योजना बद्ध तरीके से किया गया है। इसमें गुरुओं के सिद्धान्तों, आदेशों का शाब्दिक रुप से वर्णन किया गया है।

जैन धार्मिक साहित्य में जैन धर्म की वाणियों को तीर्थंकर कहा जाता है। यह धार्मिक साहित्य परम्परागत रूप से तीर्थंकर महावीर से सम्बधित है। जैन धर्म के ग्रन्थों को 'पूरब' और 'अंग' नाम से सम्बोधित कर इसमें दर्शन, योग विद्या, जैन धर्म के सिद्धान्तों का वर्णन है। जैन धर्म साहित्य का उद्देश्य, शांत रस प्राप्ति, मोक्ष की कामना, स्तुति, महावीर की महिमा, गुरु भक्ति और तीर्थंकरों का वर्णन कर जैन उपासकों की धार्मिक भावना को जगाना है।

जैन धर्म में जैन आगामों से संबंधित ग्रन्थ जैसे 'अनुयोगद्वार सुत्त', 'ठागांग सुत्त', नदी सुत्त व रायापसेणीय आदि धार्मिक साहित्यों में संगीत संबंधी सामग्री जैन सम्प्रदाय में भक्ति संगीत के प्रचार को दार्शती है।

बौद्ध साहित्यों में भी महात्मा बुद्ध के पवित्र वचनों, इस धर्म की शिक्षाओं का वर्णन कर 'पाली तिपतक' आदि ग्रन्थों को रचा गया है। इन धार्मिक साहित्यों का उद्देश्य चित्त वृत्ति की शुद्धता ही वास्तविक शुद्धता है, जो धर्म और साहित्य के समन्वय का श्रेष्ठ उदाहरण है। बौद्ध सुताओं की लय वैदिक ऋचाओं सी ही प्रतीत होती है। बौद्ध धर्म में संगीत को 'गन्धर्व वेद' कहा जाता था। बौद्ध धर्म का काव्य गान गन्धर्व वेद के अंतर्गत आता है जिनको 'अख्वानम' कहा जाता है। ये 'अख्वानम' सामाजिक गतिविधियों के दौरान पवित्र स्थानों पर प्रस्तुत किये जाते थे। बौद्ध ग्रन्थों में 'समूह वादन' का भी उल्लेख है तथा उस काल में 'घण्टा' नामक वाद्य को आराधना के समय बजाया जाता था। बौद्ध धर्म में 'बौद्ध सुत्तों' को वैदिक ऋचाओं की तरह सुस्वर पढ़ने की प्रणाली थी। बौद्ध भिक्षु धर्म का प्रचार करने के लिए देशों-विदेशों में गाते, नाचते तथा संगीत वाद्य बजाते हुए जाते थे।

बौद्ध सुताओं की लय वैदिक ऋचाओं सी ही प्रतीत होती है। बौद्ध धर्म में संगीत को 'गन्धर्व वेद' कहा जाता था। बौद्ध धर्म का काव्य गान गन्धर्व वेद के अंतर्गत आता है जिनको 'अख्वानम' कहा जाता है। ये 'अख्वानम' सामाजिक गतिविधियों के दौरान पवित्र स्थानों पर प्रस्तुत किये जाते थे। बौद्ध ग्रन्थों में 'समूह वादन' का भी उल्लेख है तथा उस काल में 'घण्टा' नामक वाद्य को आराधना के समय बजाया जाता था। बौद्ध धर्म में 'बौद्ध सुत्तों' को वैदिक ऋचाओं की तरह सुस्वर पढ़ने की प्रणाली थी। बौद्ध भिक्षु धर्म का प्रचार करने के लिए देशों-विदेशों में गाते, नाचते तथा संगीत वाद्य बजाते हुए जाते थे।

सूफी धार्मिक साहित्य के ग्रन्थों में ईश्वर के प्रति आत्मसमर्पण की भावना निहित कर ग्रन्थों की रचना की गई।

''इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों के मूल स्त्रोत चार ग्रन्थ माने जाते हैं- कुरान, सुन्न, इज्म और कीआस।''[47]

इस्लाम धर्म के इन चारों ग्रन्थों मे कुरान, इज़्म, कीआस और सुन्न ग्रन्थों में इस धर्म के सिन्द्धातों का वर्णन धार्मिक भावनाओं को उजागर करने के लिए किया गया है। इनमें से 'कुरान शरीफ' में ईमान के महत्त्व को दार्याया गया है और इसे सब मे से श्रेष्ठ ग्रन्थ माना है।

''कुरान शरीफ में लिखा है कि सच्चा आस्तिक वही है जो एक अल्लाह और उसके पैगम्बर के अतिरिक्त और किसी में विश्वास नहीं करता।''[48]

अर्थात कुरान शरीफ में भी सूफी उपासकों को अल्लाह और पैगम्बरों में विश्वास रखने का उपदेश दिया है। सूफी साहित्यों मे एकेश्वरवाद को मान्यता दी गई है। जिससे धर्म और साहित्य का सम्बन्ध स्पष्ट होता है।

'बाईबल' दक्षिण पश्चिम देशों का पवित्र धार्मिक ग्रन्थ है। यहूदी और ईसाई दो मुख्य धर्म है। इन दोनों धर्मों के धर्म ग्रन्थों को पवित्र बाईबल का नाम दिया गया है। 'पुराना आहिदनामा' और 'नया अहिदनामा' इन दोनों ग्रन्थों को ही बाईबल का नाम दिया गया है। जिसमें यहूदियों के पैगम्बरों और ईसा मसीह के जीवन, गुणों और त्याग का वर्णन है। इस प्रकार ईसाई परम्परा का विशेष धार्मिक ग्रन्थ भी साहित्य और धर्म के सम्बन्ध को दर्ा कर विशेषता धार्मिक भावना को उजागर करने का एक विशेष साधन है। इस प्रकार इन सभी धर्मों, सम्प्रदाओं के साहित्यों ग्रन्थों का उद्देश्य धार्मिक परम्पराओं के संरक्षण के लिए किया गया है जो कि हर धर्म के उपासकों के हृदय में धार्मिक रस निष्पत्ति को उजागर करता है।

निष्कर्षः-

निष्कर्ष रूप से यह बात सामने आती है कि भारतीय संस्कृति एवं दर्शन में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, यह सुदृढ़ माध्यम है। इन सब की पूर्ति के लिए विभिन्न परम्पराओं में भिन्न-भिन्न उपाधानों का प्रयोग किया। संगीत जैसी मार्मिक ललित कला को मात्र जन मनोरंजन के लिए ही नहीं अपितु ईश्वर प्राप्ति के लिए व इन सभी साधनों की प्राप्ति के लिए सबसे सशक्त माध्यम माना गया है। धर्म की बात की जाए तो भारत एक ऐसा देश है जहाँ कई धर्म पल्लवित हुए। भिन्न-भिन्न धार्मिक परम्पराएं हैं जैसे हिन्दु धर्म की कई शाखाएँ, बौद्ध, जैन, इसाई, सिक्ख, मुस्लिम धर्म आदि। साहित्यिक दृष्टिपात करने से पता चलता है कि प्रत्येक धर्म ने अपनी धार्मिक शिक्षाओं को साहित्य के आधार पर ही रचा। इस प्रकार इन तीनों विधाओं संगीत, धर्म और साहित्य का परस्पर बहुत गहरा सम्बन्ध है। प्रत्येक धार्मिक परम्परा ने संगीत के द्वारा ही ईश्वर की उपासना की है चाहे वह वैदिक ऋचाएं हों, गीता या रामायण के श्लोक हों या जैन धर्म की सूक्तियाँ हों। बौद्ध धर्म की शिक्षाओं, मुस्लिम धर्म की कव्वाली हो या सिक्ख धर्म में निहित गुरबाणी कीर्तन की शब्द परम्परा हो। सभी धर्मो ने संगीत को भक्ति का आधार बनाया है और विभिन्न गुरूओं, पीर-पैगम्बरों, महाऋषियों, सन्तों ने भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न प्रकार के धार्मिक साहित्यों की रचना करके संगीत, धर्म और साहित्य के अन्तर्सम्बन्ध को बहुत सहजता से स्पष्ट किया है।

सन्दर्भ पुस्तक सूची

1. पंडित शारंगदेव, संगीत रत्नाकर, प्रथम स्वरगताध्याय, प्रथम पदार्थ संग्रह प्रकरण, श्लोक-21
2. आचार्च ब्रृहस्पति, संगीत चिन्तामणि पृ 5
3. पं. अहोबल, संगीत पारिजात, लो-20
4. वीणा मानकरण, संगीत सार, पृष्ठ 1.
5. पं. विष्णु नारायण भातखण्डे, क्रमिक पुस्तक मालिका, दूसरी पुस्तक, पृ 9.
6. अशोक कुमार, यमन संगीत रत्नावली, अभिषेक पब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण 2008, पृ 4.
7. शारंगदेव, संगीतरत्नाकर, प्रथम स्वरगताध्याय, प्रथम संग्रहप्रकरण श्लोक-23.
8. डॉ. अरविन्द कुमार, संगीत, पृ0 3.
9. रीता धनकर, हरियाणा का लोक संगीत, पृ 1.
10. डॉ. लक्ष्मी नारायण गर्ग, राग विाारद, भाग 1 पृष्ठ . 196
11. डॉ. विनीता कुमारी -हिन्दी सन्त साहित्य के स्त्रेत, प ठ-68.
12. वहीं, पृष्ठ 69.
13. सत्यभान शर्मा, पुष्टिमार्गीय मन्दिरों की संगीत परम्परा (हवेली संगीत), पृः 1
14. डॉ. विनीता कुमारी, हिन्दी सन्त साहित्य के स्त्रोत, पृष्ठ-71.
15. कमल किशोर मिश्र, नटराज ब्रह्माण्ड का दिव्य नर्तन, पृ 15
16. m.ajtka.in.story

17. रेनू सचदेव धार्मिक परम्पराऐं एवम् हिन्दुस्तानी संगीत, पृष्ठ-
18. महामहिम श्री पंडित ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी, चार युगों में माँ शेरांवाली, पृः 81
19. डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग, संगीत-2011, रामायणकालीन संगीत एवम् संगीत शिक्षक, डॉ. आशु गौतम, प : 10
20. डॉ शरच्चन्द्र, श्रीधर परांजपे, भारतीय संगीत का इतिहास, पृः 135-138
21. htpps:èèhi.m.wikipedia.org>wiki>d‘.k
22. htpps:èèhi.m.wikipedia.org>wiki>
23. डॉ भारती शर्मा, संगीतिक एवम् धार्मिक परम्परा (एक अवलोकन) पृः 57
24. डॉ. विनीता कुमारी, हिन्दी सन्त साहित्य के स्त्रोत, पृष्ठ-83.
25. विवेक साहनी, संगीत विवेक, पृ0ः 27
26. प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़, डॉ. विद्यासागर सिंह, धर्म एक स्वरूप अनेक (भाग-2), पृष्ठ-26.
27. वहीं पृ0 42
28. डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग, संगीत -2011, बौद्धकालीन संगीतः एक अध्ययन, डॉ. निशा पाठक, पृ0 43.
29. कुरआन, पृ 22-75.
30. संत श्री इन्द्र सिंह जी ‘चक्रती‘, कल्याण- भक्ति अंक, पृ0ः 597
31. https://hi.m.wikipedia.org/wiki/ईसाई धर्म
32. डॉ भारती शर्मा, सांगीतिक एवम् धार्मिक परम्परा, पृ0:48
33. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत-हिन्दी शब्दकोत्र, पृ॰1104.
34. डॉ. राजे सुमन, साहित्येतिहासःसरंचना और स्वरुप पृष्ठ- 50.
35. श्री, बलदेव उपाध्याय, भारतीय साहित्य शास्त्र, 2007 वि, पृ 571
36. डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, साहित्य विज्ञान, पृ -19.
37. डॉ. नगेंद्र, भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास, पृ. 11
38. श्री मद्भगवद गीता पृ॰ 350
39. हेम भटनागर, हिन्दी साहित्य के श्रृंगार युग में संगीत काव्य, पृ 88.
40. विवेक साहनी, संगीत विवेक, पृ0ः 27
41. पत्र पत्रिका भगवत शरण शर्मा, भारतीय संगीत का इतिहास पृ 81.
42. सं. परशुराम चतुर्वेदी, मीरां बाई की पदाबली, पद संख्या-18.
43. डॉ॰ नागेन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ॰ 197
44. सूरदास, सूरसागर, पृ॰ 215
45. डॉ. विनीता कुमारी, हिन्दी सन्त साहित्य के स्त्रोत पृ 71.
46. डॉ नागेन्द्र, भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास, प्र 43
47. प्रो॰ (डॉ॰) सोहनराज तातेड़, डॉ॰ विद्यासागर सिंह, धर्म एक स्वरुप अनेक (भाग-2) पृ 66
48. कुरआन शरीफ 22/75

पंजाबी गायकी के सरताज और स्वर के धनी सरदूल सिकंदर के चरित्र और गायकी के विशेष पक्ष

डॉ. श्रुति होड़ा

सरदूल सिकंदर का जन्म 25 जनवरी 1961 को पंजाब के ऐतिहासिक गाँव खेड़ी नौध सिंह जिला लुधियाना (जो अब फतिहगढ़ साहिब) में मौजूद है। आपके पिता का नाम स्व. श्री सागर मस्ताना और माता का नाम स्व. श्रीमती लीलावती जी है। जिनके तीन पुत्र और तीन पुत्रियाँ है। सब से बड़ी बहन शाम कौर, बाई स्व. श्री गमदूर अमन, और भरपूर सिकंदर, शिंगार कौर और सरदूल सिकंदर सब से छोटी बहन करमजीत कौर हैं पिता सागर मस्ताना जी, दादा श्री रल्ले खान, पड़दादा श्री करम बक्श, नक्ड दादा श्री करीम बक्श जी सारे ही महाराजा पटियाला के दरबारी गायक रहे थे।[1] सरदूल सिकंदर जी का बचपन गाँव खेड़ी नौध सिंह में व्यतीत हुआ। एक सांगीतिक परिवार में पैदा होने के कारण आपको संगीत सीखने के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ा। आपका सारा बचपन गायकी में ही व्यतीत हुआ। पाँचवीं तक आप अपने गाँव के स्कूल खेड़ी नोध में ही शिक्षा ग्रहण की और आँठवीं कक्षा आपने रायपुर माज़री गाँव के स्कूल में रहकर पास की और दसवीं कक्षा में आप पहले स्थान पर रहे। इसी प्रकार आपने स्कूल की शिक्षा के बाद कालेज की शिक्षा भी ग्रहण की।

सरदूल जी का विवाह 1993 को पंजाब की प्रसिद्ध गायिका और अदाकार अमर नूरी के साथ हुआ। आपके दो बच्चे सारंग सिकंदर और आलाप सिकंदर है।

सरदूल सिकंदर को संगीत की प्रेरणा उनके घर से ही प्राप्त हुई उन्होंने अपने पिता सागर मसताना, दादा जी और पड़दादा जी को बचपन से ही गाते हुए सुना था, और उनसे ही इनके मन में गाने की इच्छा प्रगट हुई। इनके बिना मुख्य कलाकार जो आपके गायकी सफर के लिए प्रेरणा स्त्रोत बने गुलाम अली जी, शौकत अली, नुस्रत फतह अली खान, मुहम्मद रफी और सुरेश वाडेकर आदि। पंजाब के प्रसिद्ध संगीत निर्देशक और पंजाबी गायकी में विशषे जगह बनाने वाले श्री चरणजीत अहुजा जी से आपने संगीत शिक्षा ग्रहण करने का सौभाग्य साल 1986 में प्राप्त हुआ।

पंजाबी कलाकारों में सरदूल सिकंदर एक ऐसे कलाकार हुए हैं, जिन्होंने अपनी गायकी के सफर में आई आर्थिक मुश्किलों से भी हार नहीं मानी बल्कि अपनी लगन और कड़ी परिश्रम के साथ संगीत की दुनिया में एक विशेष पहचान बनाने में कामयाब हुए है।[2] सरदूल सिकंदर ने सब से पहले दूरदर्शन के एक प्रोग्राम में गीत 'रोडवेज़ की लारी' के साथ अपनी कला का प्रदर्शन किया। इसके बाद उन्होंने अपनी गायकी के सफर को अब तक बरकरार रखा, लोक संगीत, फिल्मी संगीत हिन्दी, पंजाबी, भक्ति संगीत हर प्रकार की गायन शैली को गाया।[3] इनके पास संगीत की सैद्धान्तिक सूझ होने के कारण आपकी गायकी पर पकड़ मज़बूत रही है और हर तरह की गायन शैली गाने की समर्था रखते हैं, गीतों को भाव भरपूर और श्रृंगार नई

एसोसिएट प्रोफेसर, वाद्यवादन, पीजी जीसीजी, सेक्टर-11, चण्डीगढ़

तरीके से पेश करने में माहिर है इनके गीत अच्छे विषय पर निर्धारित और संदेश होते है। सरदूल सिकंदर ने अधिक गीत रागों पर ही आधारित है। इनके गीतों की शब्दावली में भाव और रस भरपूर मिलता है। इनके गीतों में संगीत के नियमों का पालन मुख्य तौर पर देखने को मिलता है।[4] सरदूल जी के गीतों पर नज़र डालते हैं तो पंजाब के रीति-रिवाज़ और इसका स्वरूप देखने को मिलता है। उनके द्वारा लिखे गीत, भजन और संगीत के विभिन्न पहलुओं की होती है। सरदूल सिकंदर मनोविज्ञानिक सोच के मालिक है। गीत में जिस राग और ताल के प्रकार का इस्तेमाल होना चाहिए, इससे वह अच्छी तरह से वकिफ हैं। इस लिए उन्होंने शास्त्रीय गायकी और सुगम संगीत दोनों का प्रयोग किया जिनको समय-समय श्रोताओं द्वारा सराहा भी गया। इसके इलावा मंच प्रदर्शन की सही समझ होने पर वह श्रोताओं की पसंद और ना पसंद समझते हैं हर मंच प्रदर्शन धार्मिक, विवाह, सभ्याचारिक को अलग-अलग नज़रिये से देखना उनकी गहरी सोच का परिणाम है। सरदूल जी की एकल गायकी में कुल 13 एल्बम्ज़ रिकॉर्ड हैं। 6 युगलबंदी एल्बम्ज़ जिनमें उनके साहित्य कलाकार अमर नूरी (पत्नी), आशा भौंसले कविता कृष्णमूर्ती, सुनीधि चौहान, श्रेया घोषाल, जसविंदर नरुला और कई भारत की प्रसिद्ध गायक कलाकारों के साथ गाया है।[5] इसके इलावा 4 एल्बम्ज़ सिख इतिहास से संबंधित, 13 एल्बम्ज़ से ज्यादा माता के भजनों की रिकॉर्डिंग है।[6] और 2-3 पंजाबी गायकी में बतौर पार्श्व गायक गीत गाये और हिन्दी फिल्मों में भी पार्श्व गायक की भूमिका निभाई।[7]

सरदूल सिकंदर गायक होने के साथ-साथ एक अच्छे गीतकार, निदर्शेक भी है। 'सानू अजे होए ना दीदार' माता की भेंटे सरदूल सिकंदर जी ने खुद लिखी और निर्देशक भी खुद ही है। इसी तरह एक पंजाबी फिल्म 'पिंड दी कुड़ी' में 'इक' कव्वाली जिसके निर्देशक और गायक खुद सरदूल जी है। इसी तरह इनके बहुत सारे गीत, भजन है जो इन्होंने खुद ही लिखे और जिनका निर्देशन भी खुद ही किया। सरदूल जी की गायकी हमेशा उच्च स्तर की रही है। इनके गीतों में आबरू, मां बेटे का प्यार, पंजाबी सभ्याचार, इज्जत, पंजाबी रीते झलकती हैं जैसे माहिए, टप्पे, डोली, भाबिये, गिद्धे बिच नच ले, भेट-दे चरना दा प्यार माये, गीत-'लोका दे ता पुत नित वतना नू औनदे तेरा उड़दा नी चंदरा जहाज वे' आदि कई गीत प्रचलित है।

सरदूल सिकंदर ने 1980 से लेकर अब तक बहुत सारे सामाजिक रिश्ते-नाते, धार्मिक और सभ्याचारिक गीत पंजाबी संगीत और सभ्याचारिक विरसे की झोली में डाले। जिनसे आज के पंजाबी कलाकारों को बहुत कुछ सीखने को मिलता है। जैसे गीतों में राग को पहल, भावपूर्ण गायकी, स्वर पर मजबूत पकड़, रयाज को पहल, गीतों में गमक, कण, खटका, मुर्की, मींड का प्रयोग। जहाँ आज के युग में संगीत के क्षेत्र और सभ्याचार में पश्चिमी व्यावसायीकरण आदि जैसे पक्ष भारी पड़ रहे हैं वही सरदूल सिकंदर की गायकी कलाकारों के लिए ही नहीं बल्कि श्रोताओं का भी मार्ग-दर्शन का काम कर रही है।[8]

निष्कषर्तः-सरदूल सिकंदर ने शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत और धार्मिक गीतों को अपनी आवाज़ की योग्यता के द्वारा पेश किया है। सरदूल सिकंदर जी की आवाज का विशेष गुण यह है कि उन्होंने मुश्किल शैली के गीतों को बहुत सरल और मधुर रूप में गा कर श्रोताओं के सामने पेश किया है। उदाहरण के लिए यह पहले कलाकार हैं जिन्होंने करुणा भरपूर गीत के अंतरे को तार सप्तक में गाया ही नहीं बल्कि उसको बहुत अच्छी तरह से निभाया भी है। इनकी आवाज़ मुश्किल से मुश्किल और सरल से सरल भाव हर प्रकार के गीतों के लिए उचित है। चाहे वह राग बद्ध गीत हो या फिर सुगम संगीत के अंतर्गत आते हों, जैसे सोलो (एकल), युगलबंदी, लोक गीत, धार्मिक शब्द और भेंटे आदि। भक्ति भाव से भरे गीतों को सुन कर उनकी आवाज़ में एक इस तरह की सोज़ और सुरीलापन, कोमलता झलकती है। जैसे यह गीत शायद उन्हीं के लिए ही बने हों। सरदूल सिकंदर जी एक अनोखी प्रतिभा के धनी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. होशियार सिंह अर्शी, दरपन, 2007
2. श्रीमती कियुटी वठला, वियाती प्राप्त लोग गायक सरदूल सिकंदर संगीत, पृ0 46
3. अजीत मैगज़ीन, तिथि 16.07.2000
4. गायक फ़िरोज़ खान से हुई भेंट वार्तालाप
5. सरदूल सिकंदर जी से हुई भेंट वार्तालाप
6. www.Sardoolsikander.com
7. गायिका अमर नूरी जी से हुई भेंट वार्तालाप
8. उस्ताद चरनजीत अहुजा जी से हुई भेंट वार्तालाप

संगीत चिकित्सा के प्रति उभरता झुकाव

डॉ. ममता रानी ठाकुर

भारतीय संगीत का इतिहास ऐसे कथाओं से भरा है जो कि इस बात का द्योतक है कि संगीत में रोगनिवारक क्षमता है। अतीत से ही संगीत का उपयोग मानव की भौतिक मानसिक और मनोवैज्ञानिक दुर्बलताओं से मुक्त होने के लिये किया जाता रहा है। सामवेद में ही रोगों के निवारण के लिये सामगायन का विधान मिलता है। नारदकृत संगीत मकरंद, शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर, मतंगकृत बृहद्देशी, क्रौंच मुनि के ग्रंथ कुर्णक प्रभा, चरक संहिता, मैंद ऋषि के ग्रंथ शब्द-कौतुहल, अग्नि पुराण इत्यादि शास्त्र ग्रंथों में संगीत को रोगोपचार का मुख्य साधन बताया गया है।

संगीत में निहित ध्वनि के विभिन्न स्वरूपों में आकर्षक ध्वनियों से रचित संगीत का सीधा सम्बन्ध मानव मन के सूक्ष्म एवं कोमल संवेगों से है। ध्वनि का विशेष रूप से किया गया संघात रासायनिक परिवर्तन पैदा करता है। इस प्रकार विभिन्न ध्वनियों के मिश्रण से निर्मित संगीत विभिन्न प्रकारों के भावों को निर्माण कर मानव मन व शरीर पर गहरा असर करता है। इसी प्रभावोत्पादक क्षमता का प्रयोग जब चिकित्सा रूप में शारीरिक व मानसिक संतुलन को व्यवस्थित रखने के उद्देश्य से किया जाता है तो यह प्रभावात्मक प्रक्रिया डनेपब जैमतंचल अथवा संगीत चिकित्सा के नाम से जानी जाती है। अर्थात् संगीत की सुमधुर स्वर लहरियों से शारीरिक मानसिक विकार विकृतियों का उपचार ही संगीत चिकित्सा है। यह कला और विज्ञान का समन्वय है। यह एक अन्तवैयक्तिक प्रक्रिया है जिसमें एक प्रशिक्षित संगीतज्ञ व संगीत चिकित्सक अपने मरीजों के स्वास्थ्य में सुधार या उनके स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए संगीत के साथ-साथ शारीरिक मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, भावनात्मक व सौंदर्यात्मक सभी पहलुओं का उपयोग करता है।

संगीत चिकित्सा का मूल यद्यपि भारतीय संगीत में है परन्तु पाश्चात्य देशों में इस पर विशेा प्रयोग एवं अनुसंधान होता रहा। 1870 में जब ग्रामोफोन की खोज हुई तब संगीत उपचार में गुणात्मक परिवर्तन हुआ। 19वीं सदी के उत्तरार्ध एवं 20वीं सदी के शुरूआत में यूरोप में संगीत-चिकित्सा को बड़े सम्मान से देखा गया और इसका प्रयोग मानसिक रोगों को ठीक करने के लिए किया जाने लगा। इसके पश्चात् अवसाद एवं तनाव जन्य रोगों को दूर करने की प्रक्रिया चली। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अमेरिका में इसकी लोकप्रियता में भारी अभिवृद्धि हुई। संगीत चिकित्सा का प्रयोग युद्ध से प्रभावित मनोरोगों की मुक्ति हेतु किया गया।

अधिकांश चिकित्सकों ने भारतीय संगीत की प्रभावशीलता को जांचा परखा एवं प्रयोग किया। संगीतज्ञ एन्ड्रयू वाट्सन के अनुसार- भारतीय संगीत में प्रयोग होने वाले राग संगीत चिकित्सा के मुख्य आधार है। 'द हीलींग फोर्स ऑफ म्यूजिक' के लेखक आर0 मैकलीन ने स्पष्ट किया है कि- 'भारतीय संगीत मानसिक शांति व सक्रियता लाने वाली दिव्य औषधि है जो हमारे तन-मन और भावना में नव जागृति भर देती है।''

भारतीय संगीत का प्रधान वैशिष्ट्य राग है।

व्याख्याता, संगीत विभाग, एम0 एल0 एस0 एम0 कॉलेज, दरभंगा

स्वरों की एक विशेष अवस्था राग कहलाती है। राग में कुछ ऐसे तत्व है जो राग की लक्ष्य पूर्ति रंजकता में सहयोगी होते हैं। रोगोपचार में इन विशिष्ट तत्वों की भूमिका निर्विवाद है। इन विशिष्ट तत्वों के उपचारात्मक प्रभावों को देखने समझने से पूर्व यह समझना आवश्यक है कि संगीत से चिकित्सा आयुर्वेद का ही अंग है। हमारे संगीताचार्यों ने संगीत से होने वाले प्रभाव को आयुर्वेदिक आधार पर ही विश्लेषित किया है। आयुर्वेद तत्व के अनुसार संगीत हमारे शरीर को मदद करने वाली एक प्रणाली है। आयुर्वेद के अनुसार शरीर के तीन स्तम्भ वात, पित्त और कफ माने गये हैं। इनमें से यदि किसी भी एक में दोष अथवा विकृति आती है तो मनुष्य रोगी हो जाता है। स्वस्थ रहने के लिए जिस तरह उचित आहार की आवश्यकता होती है उसी प्रकार ऋतु और समय के अनुसार विभिन्न प्रकार के राग-रागिनियों को सुनना भी फलप्रद है।

जहाँ आयुर्वेद के प्रमुख ग्रंथ 'चरक संहिता', 'सुश्रुत संहिता' में ज्वर, दमा, मधुमेह, हृदय रोग, टी0बी0, पीलिया, मंदता आदि रोगों में मंत्रों से उपचार का उल्लेख हुआ है वही सामवेद में ऋचाओं के गायन द्वारा रोग मुक्ति महात्म्य बताया गया है। संगीताचार्य तुम्बरू ने संगीत स्वरामृत में ध्वनि के विभिन्न प्रकारों को शरीर में होने वाले त्रिदोषों यथा- वात्, पित्त व कफ के साथ सम्बन्ध को बताया है - उच्च स्तरौः ध्वनिरूक्षो विज्ञेयः वातजाबुधै।

गम्भीरोधनशीलस्य, ज्ञातव्यः पित्तजो ध्वनिः।।
स्निग्धस्य सुकुमारस्य मधुरः कफजो ध्वनिः।
त्रयाणं गुणं संयुक्तो विज्ञेयः सत्रिपातजः।।

अर्थात् उच्च स्तर के रूक्ष लगने वाले ध्वनि वात के होते हैं, गम्भीर गहरे ध्वनि पित्त के होते हैं तथा स्निग्ध भाव वाले मधुर ध्वनि कफ के होते हैं। इन तीनों के संतुलन के लिए विभिन्न रागों का संयोजन कर मानव की प्रवृत्ति का सही निदान व उपचार किया जाना सम्भव है। आयुर्वेद व गन्धर्व वेद के नियोजन से ही पूर्व में संगीत द्वारा रोगोपचार की प्रक्रिया व्यवहार में थी और इसीलिए वैद्यों के लिए संगीत का ज्ञान आवश्यक था।

श्री गोपाल कृष्ण भारद्वाज ने अपने लेख 'नाद साधना एक अभूतपूर्व अभियान' में लिखते है कि ''शास्त्रीय संगीत की रचना वैज्ञानिक प्रक्रिया पर आधारित है। शारीरिक मानसिक असंतुलन को स्वर विज्ञान के आधार पर उपयुक्त गायन के विधान से संतुलित किया जा सकता है''। विद्वानों का मानना है कि यद्यपि सभी राग रंजक होते हैं परन्तु यदि सही समय पर गाये बजाये जायें तो उनके प्रभाव में दोगुनी वृद्धि हो जाती है। रागों की प्रक ति, रस भाव का सम्बन्ध राग-रागिनियों से है तभी तो प्रातः काल भैरव, दोपहर में तोड़ी सायंकाल यमन और रात्रि में मालकौंस गाने की एक सुद ढ़ परम्परा शास्त्रों में वर्णित है। चिकित्सकों की राय में शरीर में प्रातः काल और सायंकाल ही अधिक शिथिलता रहती है जिसका मुख्य कारण प्रोटोप्लाज्मा की शक्ति का ह्रास होना है। इस समय किसी कार्य को करने में खिन्नता व उद्विग्नता बनी रहती है। शिथिलता के कारण शरीर पर काफी दबाब पड़ता है। अतः प्रातः काल का संगीत शिथिल हुये प्रोटोप्लाज्म को नियमित करते हुये शरीर को स्फूर्ति एवं बल प्रदान करता है। प्रातः कालीन व सायं कालीन पूजा अर्चना के पीछे यह एक वैज्ञानिक कारण था जो मनुष्य को स्वस्थ बनाये रखता था।

हृदय रोग विशेषज्ञों के अनुसार यदि आप रोज बीस मिनट मधुर संगीत सुने तो आपका ब्लडसर्कुलेशन सही होता है। संगीत की राग-रागिनियों का हमारे शारीरिक मानसिक व्यवस्था से गहरा ताल्लुकात है तभी तो दर्द के सुर हमें दर्द में और खुशी के गीत आनन्द के सागर में डुबो देते हैं। संगीत के सुमधुर राग-रागिनियों से मानसिक स्वास्थ्य में बलता प्राप्त होती है। गायन व श्रवण से मनुष्य के भीतर आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन होते हैं। यही कारण है कि इसके श्रवण से हृदय की धड़कन बढ़ जाती है, दुःख से आंखे भर आती है, व्यथा से दिल भारी हो जाता है, हृदयगति, नाड़ीगति तथा मस्तिकीय तरंगों में परिवर्तन होते हैं।

स्वर साधना एक प्रकार का शारीरिक व्यायाम है जो स्वयं में एक चिकित्सा है। यह एक प्राणायाम है जिससे शरीर के समस्त अवयवों का व्यायाम हो

जाता है। गाने से फेफड़े व स्वर यंत्र मजबूत होते हैं तथा दमा, तपेदिक इत्यादि फेफड़ों की बीमारी होने का डर नहीं रहता साथ ही संगीत का प्रयोग फेफड़े, गले, कंठ, तालू जबड़े व अमाशय का फलप्रद व्यायाम है। इससे नाड़ियों का शोधन होता है, ज्ञान तंतु सजग होते हैं, आक्सीजन की वृद्धि होती है तथा लम्बी आयु प्राप्त होती है।

राग चिकित्सा पर किये जा रहे शोध व अनुसंधानों के परिणाम स्वरूप यह बात सामने आई है कि राग भूपाली तथा तोड़ी उच्च रक्त चाप के रोगियों को आराम देते हैं। जबकि राग मालकौस तथा आसावरी निम्न रक्त चाप के रोगियों के लिए लाभप्रद है। राग भैरवी मानसिक शिथिलता लाता है तथा सीजोफ्रिनिया के रोगियों को नींद लाता है। राग पूरिया अनिद्रा के रोगी को लाभ पहुँचाता है। राग सारंग पित्तनाशक है तथा क्षय एवं मिर्गी के रोगियों को राहत देने वाला है। राग 'गोरख कल्याण' चिन्ता, तनाव व न्यूरोसिस के रोगियों को तथा राग 'शिवरंजनी' स्मरण शक्ति बढ़ाने में सहायक है। अपने निश्चित स्वरूप व रस के कारण ही ये राग शरीर पर एक निश्चित प्रभाव डालते हैं तथा रोग विशेष में प्रभावी होते हैं। पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार हाई फ्रीक्वेंसी म्यूजिक व्यग्र लोगों में मन के वेग को कम करता है।

ग्रेनेडा विश्वविद्यालय के शोध कर्ताओं ने यह साबित किया है कि संगीत चिकित्सा मस्कुलोस्केलटन दर्द को कम करने के साथ रोगियों के लिए जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाता है तथा अवसाद चिन्ता, दर्द को भी कम कर देता है।

अनुसंधानरत संगीतज्ञों, चिकित्सकों का यह मानना है कि संगीत चिकित्सा के माध्यम से शरीर में एडोर्फिन आदि लाभकारक रसायनों का स्राव बढ़ाकर और मस्तिष्क तरंगों पर नियंत्रण कर विभिन्न रोगों का इलाज किया जा सकता है। तथा इस पद्धति के माध्यम से एड्स, कैन्सर, एल्जाईमर, टी0बी0 आदि के मरीजों की तकलीफों को कम करने, प्रसव पीड़ा कम करने के साथ-साथ आपरेशन के दौरान दी जाने वाली एनेस्थिसिया की मात्रा तक को कम किया जा सकता है। राग-चिकित्सा से न्यूरो हरमोन्स का स्तर बढ़ जाता है। और इससे प्राकृतिक तौर पर दर्द निवारण, मानसिक तनाव तथा विस्मृति दूर करने का प्रभाव होता है। अनुसंधानों में पाया गया कि ऐसे रोगियों में संगीत श्रवण से वैसा ही प्रभाव होता है जितना कि दस मिलीग्राम के बेलियम की गोली लेने से होता है।

लय के साथ ताल का महत्व विशेष मायने रखता है। प्रत्येक ताल अपने छन्द वादन शैली व गति भेद के कारण पृथक-पृथक रस की सृष्टि करता है। 'तीन ताल' के द्वारा श्रृंगार, करूण, वात्सल्य आदि रसों का, 'तिलवाड़ा' शान्त रस का 'आड़ा चारताल', शांत भक्ति व वीर रस का 'झूमरा', 'दीप चन्दी' 'झपताल' से श्रृंगार एवं करूण रस तथा चार ताल, सूलताल, तीव्रा इत्यादि वीर, शान्त, भक्ति, श्रृंगार आदि रसों का संचार करते हैं। दादरा, कहरवा, रूपक इत्यादि ताले श्रृंगार रस को उद्दीप्त करती है।

तबला वादक मुस्तफा हुसैन तालों के माध्यम से संगीत चिकित्सा का प्रयोग कर रहे हैं। इनका मानना है कि सुरों की लयवद्धता व उतार चढ़ाव को कम ज्यादा कर साधारण या गम्भीर बीमारी में राहत दी जा सकती है। अलग-अलग ताल शरीर में अलग-अलग फ्रीक्वेंसी पैदा करते हैं। विभिन्न प्रकार के वाद्यों का प्रभाव विभिन्न व्यक्तियों पर विभिन्न रूपों में पड़ता है जैसे- ढोल की आवाज किसी के मस्तिक को शांत कर सकती है तो कितने ही उत्तेजित हो जाते हैं।

अतः ताल व लय का प्रभाव रोगी पर निश्चित रूप से पड़ता है विद्वानों ने संगीत चिकित्सा के समय रोगी की स्थिति के अनुकूल ताल के चयन को प्राथमिकता दी है। वात् प्रकृति के गुण चंचलता को कम करने के लिए शांत रस प्रधान तालों का चयन करना चाहिए जैसे- रूपक, झूमरा, एक ताल (मध्य) इत्यादि। पित्त को साम्यावस्था में लाने हेतु श्रृंगार रस प्रधान तालों का चयन करना चाहिए जैसे- दादरा कहरवा, तीन ताल, दीपवन्दी धुमाली इत्यादि। इसी प्रकार कफ प्रकृति प्रधान रागों को दूर करने हेतु वीर रस प्रधान तालों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

संगीत चिकित्सा करते समय संगीत चिकित्सक को यह ज्ञात होना चाहिए कि किस प्रकार के रोग हेतु किस ताल का चयन किस लय में होना चाहिए। रोग की प्रकृति के अनुसार ही सही राग का चयन कर उसे उपयुक्त लय-ताल में रोगी को सुनाना चाहिए।

हमारे शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को पुनरूज्जीवित करने की जो एक स्निग्ध एवं आश्चर्यजनक शक्ति संगीत में है, इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव अब संसार के श्रेष्ठ चिकित्सकों को अस्पतालों और गवेषणालयों के प्रयोगों द्वारा होने लगा है। यहाँ तक कि सोवियत रूस के कई अस्पतालों में यह प्रमाणित किया गया है कि संगीत नेत्ररोगियों की दृष्टि शक्ति को बर्द्धित कर सकता है। इस प्रकार की संगीत चिकित्सा में रोगियों को किसी प्रकार की औषधि खाने के लिए नहीं दी जाती, केवल नियत समयों में उसे निर्दिष्ट संगीत सुनना पड़ता है। इतना ही नहीं बल्कि समान ताल और सुर में घड़ी का जो टिक्-टिक शब्द होता है, उससे भी दृष्टि शक्ति की उन्नति हो सकती है। इसलिए दूरवीक्षण, अणुवीक्षण आदि यंत्रों द्वारा जो लोग प्रतिदिन दीर्घ समय तक काम करते हैं, अथवा जो लोग नाना प्रकार के भास्कार्य करते हैं उनकी दृष्टि शक्ति को वर्धित करने के लिए यह संगीत चिकित्सा बहुत ही उपकारी और सहायक सिद्ध हो सकती है।

अब तो शल्योपचार चिकित्सा में भी संगीत का प्रयोग होने लगा है। जिस रोगी की शल्य चिकित्सा करनी पड़ती है उसके शरीर पर व्यापक रूप में एनेस्थेटिक का प्रयोग करनी पड़ती है या उसके शरीर पर व्यापक रूप में एनेस्थेटिक का प्रयोग न करके केवल व्याधिग्रस्त अंश पर उसका व्यवहार किया जाता है। परन्तु इसके स्थान पर रोगी के मन को दूसरी ओर आकर्षित करने के लिए संगीत द्वारा एनस्थेटिक समान अचेतावस्था की सृष्टि की जाती है। बहुत से प्रसिद्ध चिकित्सकों ने इस व्यवस्था का प्रयोग किया है और इसमें उन्हें सफलता भी मिली है।

प्रयोग द्वारा यह भी पाया गया है कि हिस्टीरिया रोग के रोगी पर निर्दिष्ट समय में जब रोग का आक्रमण होता है तब उसकी अवस्था को लक्ष्य करके डाक्टर लोग ऐसे समय में रोगी को संगीत के प्रभाव से मुग्ध कर रखने की व्यवस्था करते हैं। फलस्वरूप रोगी अन्य किसी प्रकार की औषधि का व्यवहार न करके भी केवल संगीत की सहायता से भीषण हिस्टीरिया के आक्रमण से मुक्त हो गया है।

संगीत चिकित्सा को एक कारगर नुस्खा के रूप में अमल में लाया जाने लगा है। संगीत का हमारे स्वास्थ्य पर गहरा असर पड़ता है। दुनिया भर में संगीत पर अध्ययन किए जा रहे हैं, जिसके सकारात्मक परिणाम सामने आ रहे हैं। शोध के अनुसार यह स्पष्ट हो गया है कि पसंदीदा और अनुकूल संगीत सुनकर अनेक बीमारियाँ का या तो समुचित निदान किया जा सकता है अथवा उनसे जीवन पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभावों को काफी हद तक रोका जा सकता है। इस चिकित्सा पद्धति के जरिये रक्तचाप में कमी आती है, दिल की धड़कन नियमित होती है, अवसाद को दूर भगाया जा सकता है और चिंता को काफी हद तक कम किया जा सकता है। इसके माध्यम से ध्यान केंद्रित करने की क्षमता का विकास होता है और सृजनशीलता में अपेक्षित वृद्धि होती है। संगीत हम सभी के जीवन का अभिन्न हिस्सा है। चाहे सुनने वाला हो या सुनाने वाला, संगीत सभी के दिल के तारों को झंकृत करता है। संत कबीर के शब्दों में नाद एक ऐसा संगीत है, जो बिना डोरी के शरीर में बजता है। आधुनिक विज्ञान इस बात को स्वीकार करने लगा है कि संगीत हमारी नब्ज, रक्त संचार, हमारे हृदय की धड़कन, श्वास-प्रक्रिया तथा शारीरिक गतिविधियों में उर्जावान तरंगे पैदा करता है। हाल के वर्षों में भारत में इस चिकित्सा पद्धति के प्रति लोगों में उत्सुकता बढ़ी है। जिन लोगों को किसी भी तरह के ऑपरेशन के दौर से गुजरना पड़ा है, वे दर्द निवारक दवाइयों की आवश्यकता को संगीत चिकित्सा के माध्यम से कम कर सकते हैं।

संगीत चिकित्सा द्वारा उल्टी की शिकायत कम होती है, दर्द से निजात मिलती है, पार्किसन बीमारी

में शरीर के अंगों में स्थिरता आती है। संगीत चिकित्सा का प्रयोग सिर दर्द और सर्दी-जुकाम जैसी रोजमर्रा की परेशानियॉ को दूर करने में भी सफलतापूर्वक किया जा सकता है। अमेरिका और यूरोप के अनेक देशों में इस चिकित्सा पद्धति का प्रयोग आटिज्म, पार्किसन, अल्जाइमर और हाटिगडन आदि बीमारियॉ के निदान के लिए किया जा रहा है। भारतीय उपमहाद्वीप में संगीत चिकित्सा द्वारा मानवीय मन एवं तन की जटिलताओं को सुलझाने का इतिहास काफी पुराना है, लेकिन वर्तमान में इस पद्धति को पश्चिम के देशों में अधिक अपनाया गया है। भारत देश में संगीत की विभिन्न विधाओं द्वारा शरीर, मस्तिष्क और आत्मा तक की चिकित्सा के उल्लेख मिलते है। संगीत में मानवीय मन के प्रायः समस्त पहलुओं को स्पंदित करने की अपार क्षमता है। संगीत हमारे मन के सभी पक्षों को प्रभावित करता है। दर्द, विषाद, तनाव, क्रोध, शोक, प्रेम तथा काम आदि भावों पर संगीत का गहरा प्रभाव पड़ता है। यह तथ्य भी उभरकर सामने आया है कि संगीत के प्रभाव से पिटयूटरी ग्रंथि को उत्प्रेरित किया जा सकता है। मान्यता है कि संगीत चिकित्सा द्वारा शरीर की कोशिकाओं में होने वाले कंपन से बीमार व्यक्ति की चेतनावस्था में सुधारकारी परिणाम सामने आते हैं। मोनियाग्रस्त रोगियों के लिए तेज संगीत सुनना लाभदायक होता है।

अतः संगीत चिकित्सा जहाँ शारीरिक लाभ व आरोग्य प्रदान करती है वहीं इसका गलत ढ़ंग से इस्तेमाल नुकसानदायक भी हो सकता है। इस पद्धति में किसी राग को सुन भर लेने से फायदा नहीं होता। इसमें रागों के प्रकार,उनकी ताल, मात्रा, उसमें प्रयुक्त छंद, संगत वाद्ययंत्र, गायक-गायिकाओं के स्वरों की क्षमता, विशेषता तथा साथ ही रोगी की स्थिति, रोग की तीव्रता, रोगी की शारीरिक - मानसिक स्थिति आदि कई बिन्दुओं का ध्यान रखकर ही इलाज के उचित प्रकार का चयन करना पड़ता है अन्यथा हानि भी हो सकती है।

लाभकारी संगीत वही है जो मधुर एवं मृदुल है। यदि इसे भावनाओं, संवेदनाओं से प्रस्तुत किया जाये तो इसका परिणाम न केवल गाने-सुनने वाले के लिए वरन सम्पूर्ण परिवेश को श्रेयस्कर परिस्थितियों से भरा-पूरा करने में सहायक हो सकता है।

संगीत चिकित्सा अपने आप में एक श्रेष्ठ उपचार पद्धति है। भाव संवेदना और मानसिक संतुलन में लाभप्रद यह पद्धति समकालिक औषधि के रूप में व वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति के रूप में अत्यंत प्रभावी है।

संदर्भ सूची :

1. संगीतरत्नाकर : शारंगदेव
2. अखण्ड ज्योति : सितम्बर 2004, पृष्ठ सं0 7
3. संगीत चिकित्सा : सतीश वर्मा
4. संगीत स्वरामृत : महर्षि तुम्बरू
5. संगीत : जनवरी 1972,
6. संगीत : जनवरी 1994
7. संगीत चिकित्सा : डॉ0 संगीता श्रीवास्तव
8. संगीत मासिक पत्रिका, 1981
9. निबन्ध संगीत : श्री लक्ष्मी नारायण गर्ग
10. सरस संगीत : प्रो. प्रदीप कुमार दीक्षित नेहरंग
11. भविष्य की चिकित्सा है म्यूजिक थेरेपी : नवभारत टाइम्स 20-8-2003
12. निरोग जीवन के महत्वपूर्ण सूत्र : पं. श्री राम शर्मा आचार्य

संगीत एक विद्या एवं उसकी अवधारणा

शकुन्तला कुमारी

संगीत :

'सम' और 'गीत' दो शब्दों के संयोग से 'संगीत' शब्द बनता है। सम का अर्थ है 'अच्छा' वाध और नृत्य इन दोनों के मिलने से गीत का पूर्ण स्वरूप बन जाती है। अर्थात् गायन, वादन एवं नृत्य इन तीनों कलाओं के सम्मिलित रूप को संगीत कहते है।

मूलतः वैदिक ऋचाओं से उत्पन्न भारतीय संगीत निरंतर विकास पथ पर अग्रसर रहा है। ऋग्वेद में गायन से जीविका निर्वाह करने वाले 'गन्धर्वों' का उल्लेख किया गया है। गंधर्व लोग गायन, वादन एवं नृत्य में प्रवीण होते थे।

कला की उत्पत्ति अथवा विकास दिनों में या एक व्यक्ति द्वारा नहीं होता। भाषा का विकसित रूप आज जो हमारे सम्मुख है, वह अनेकों आयामों से गुजरा है। इसी प्रकार संगीत साहित्य एवं अन्य कलाओं के उद्गम से उनके विकास तक कई सदियों और अनेक विद्वानों के योगदान का फल है।

संगीत एवं उसकी अवधारणा

सृष्टि की रचना के साथ ही संगीत का भी जन्म हुआ। प्रकृति की ओर से मानव को अन्य जीव जन्तुओं की तुलना में अधिक सोचने-समझने की शक्ति प्राप्त है। मनुष्य में विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ करने तथा नए-नए आविष्कार करने की कला विद्यमान है। अपनी चेतना शक्ति के आधार पर ही मानव विकास की ओर बढ़ता गया तथा संगीत का भी विकास करता गया। साहित्य और कला के संबंध में मनुष्य का प्रयास निरन्तर विकासमान रहा है। संगीत का संबंध ध्वनि या नाद से है। नाद को ब्रह्म माना गया है। परंतु केवल वही नाद, जिसकी ब्रह्म से उत्पत्ति हुई है।

जिस तरह भावों के आवेग में अश्रु, पुलक, कम्प, स्वेद इत्यादि सात्विक भाव शरीर में बिना प्रयत्न के स्वतः ही प्रकट होते हैं, उसी प्रकार हर्ष, शोक और क्रोध आदि के आवेग में उन चित्तवृत्तियों की सूचक ध्वनियाँ शब्द रहित होकर केवल ध्वनियों के रूप में मुँह से स्वतः निकल पड़ती है। इसी प्रकार की ध्वनियाँ संगीत के मूल में भी है। उन्ही के कारण दूर से सुनकर पता लग जाता है कि ध्वनि हर्ष की सूचक है या शोक की। इन ध्वनियों से उनके प्रयोक्ता की चित्तवृति का बोध भी होता है।

संसार की छोटी से छोटी वस्तु का भी जब कोई-न-कोई निर्माता अवश्य है तो इस विशाल सृष्टि का निर्माता, जिसमें नियम से रात-दिन, ऋतु-परिवर्तन, जन्म-मरण, सुख, दुःखदि की अविरल धारा प्रवाहित होती हुई दिखाई पड़ती है, इसमें भी किसी का होना तर्कसंगत प्रतीत हाता हे। गान की सहज अभिव्यक्ति के विकास में सर्वप्रथम गुनगुनाना, फिर अर्थहीन ना ना, आ आ, हूँ हूँ, शब्दों को गाना तत्पश्चात् सार्थक शब्द समूहों को दो चार स्वरों में गाना और फिर शब्द, स्वर और लय के सामूहिक प्रयोग को गीत रूप देना।

कुछ विद्वानों की मान्यता है कि भारतीय संगीत की उत्पत्ति वेदों से हुई है। क्योंकि प्रारंभ से ही

शोध छात्रा विश्वविद्यालय संगीत विभाग, ति0 मां0 भागलपुर वि0वि0, भागलपुर

'गंधर्व वेद' को संगीत का ही एक रूप माना जाता रहा है। वैदिक युग में संगीत अत्यन्त पल्लवित-पुष्पित हुआ। 'ऋग्वेद' में तो संगीत विषयक वाद्यों-डमरू, वीणा, बांसुरी आदि का व्यापक वर्णन किया गया है। 'सामवेद' तो पूर्णतः संगीत पर ही आधरित एक महान ग्रंथ है।

प्रख्यात संगीतकार पण्डित 'दामोदर' भी उक्त किंवदन्ती की आंशिकतः पुष्टि करते हुए कहते हैं कि, ''ब्रह्माजी ने जिस संगीत को परिमार्जित किया, उसे भरत मुनि ने भगवान शिव के समक्ष प्रस्तुत किया, जो असीम शक्ति का प्रदायक है और संगीत कहलाता है।''

भरतमुनि के 'नाटयशास्त्र' के अनुसार 'गायन, वादन तथा नृत्य के संयोग को ही 'संगीत' कहा जाता है।' 'संगीत' को परिभाषित करना अत्यंत कठिन है, क्योंकि 'संगीत' एक अनुभूति है, फिर भी 'संगीत' मानवीय अनुभूतियों की वह शांति प्रदायक एवं उत्साहवर्धक अभिव्यक्ति है, जिससे भौतिक एवं आत्मिक आनंद की वह सुखानुभूति होती है, जिसे मात्र संगीत द्वारा ही अभिव्यक्त किया जा सकता है।

अतः संगीत की सृष्टि 'नाद' से हुई है। नाद ब्रह्म है और मनुष्य का अन्तःकरण ब्रह्म स्वरूप है, अतः संगीत एक प्राकृतिक तत्व है, जिसका सीधा संबंध मनुष्य की आत्मा से है। संगीत सिर्फ भौतिक सुख ही नहीं, बल्कि आध्यात्मिक और आत्मिक आनंद का भी प्रदायक है और इसी जीवन में चारों पुरूषार्थों की प्राप्ति कराने में समर्थ है। स्वर साधना में लीन व्यक्ति वास्तव में ब्रह्मलीन हो जाता है। इसलिए संगीत को समस्त ललित कलाओं में सर्वश्रेष्ठ माना गया है। भारतीय दर्शन के अनुसार, संगीत का वास्तविक ध्येय आत्मकल्याण, भगवत् उपासना और मोक्ष है। इन लक्ष्यों की प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन संगीत मात्र है। इसलिए कहा गया हैः

''पूजात् कोटिगुणं स्तोत्रं स्तोत्रत्कोटिगुणों जपः।
जपात्कोटिगुणं गान गानात्परतरं नहीं।।''

अर्थात् पूजा से करोड़ गुना श्रेष्ठ स्तोत्र है, स्तोत्र से करोड़ गुना श्रेष्ठ जप है और जप से करोड़ गुना श्रेष्ठ गान है। अतः गायन से बढ़कर उपासना का कोई अन्य साधन नहीं है।

संगीत की महत्ता इस बात से भी स्पष्ट है कि भारतीय महर्षियों व आचार्यों ने इसे 'पंचम वेद' या 'गांधर्व वेद की संज्ञा दी है।

संगीत की उत्पत्ति एवं विकास के संबंध में विद्वानों के विभिन्न मत रहे हैंः

भारतीय विद्वानों का मत है कि 'ओऽम' जो तीन अक्षरों की संधि से अवतरित हुआ हे। ओऽम के तीन अक्षर अ ऽ उ ऽ म् तीन प्रमुख शक्तियों के द्योतक हैं। आकार ऽ उकार ऽ मकार - ब्रह्मा - विष्णु - महेश (उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाला) शक्तियों का पुंज 'ईश्वर' है। ग्रंथों में कहा भी है-

''आकारो विष्णु रूद्दिष्ट उकारास्तु महेश्वरः।
मकारेणोच्यते ब्रह्मा प्रणावेन भयो मतः।।''

अर्थात् आकार, विष्णु, उकार - महेश और मकार - ब्रह्मा का वाचक है। ओम वेद का बीज मंत्र से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है और इसी से नाद और नाद से स्वर और स्वर से संगीत की रचना हुई। इस प्रकार शब्द और स्वर दोनों की उत्पत्ति ओउम से ही मानी गई है। मनु का कथन है कि ऋग्वेद, सामवेद व यजुर्वेद में अ,उ,म, में तीन अक्षर मिलकर प्रणव बना, श्रुतिस्मृति के अनुसार यह प्रणव ही परमात्मा का अतिसुंदर नाम है। योगशिखोपनिषद के अनुसार,

''नास्ति नादात्परो मन्त्रों न देवः स्वात्मनः परः।
नानुसंधे परा पूजा न हि तृप्तेः परं। सुखम।।''

अर्थात् नाद से बड़ा न कोई मंत्र है, न देव और न ही इससे बड़ी कोई पूजा ही है और न नाद से बड़ी कोई तृप्ति है और न ही नाद से बड़ा कोई सुख।

संगीत के जन्म का उदगम 'नारी सौन्दर्य' को माना गया है। सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ 'हिमालोमो' ने अपनी पुस्तक ''संगीत के जन्म और विकास की कहानी'' में संगीत के उदगम् पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि जब सृष्टि में प्रथम नारी का जन्म हुआ तो पुरूष उसकी ओर आकर्षित न हुआ।

नारी का सौन्दर्य पुरूष को मुग्ध नहीं कर सकी। पुरूष ने उस सौन्दर्य में कोई गतिशीलता कोई दिव्यता नहीं देखी। उसमें उसे वो रश्मियाँ प्राप्त न हुई जिनके द्वारा वह उसकी ओर आकर्षित हो सकता। विवश हो कर सृष्टिकर्ता ने नारी को पृथ्वी से वापस बुला लिया। गहन छान-बीन के पश्चात् यह उदघोषित हो पाया कि नारी संगीत की कला से वंचित है, अतः नारी को संगीत से अलंकृत कर पुनः उसे पृथ्वी पर भेजा गया। नारी के पुनः आगमन से पृथ्वी का वातावरण झंकृत हो उठा उनके सौन्दर्य ने सप्त स्वर बिखेरा यही स्वर प्रकृति ने लिया। इन्हीं स्वरों को पुरूष ने अपनाया और यही सप्त स्वर सृष्टि में व्याप्त हो गया।

निष्कर्षतः यह कि संगीत के स्वरों में परस्पर स्नेह उत्पन्न करने की अदभुत शक्ति है। दूसरे शब्दों में सृष्टि की वृद्धि में संगीत के स्वर ही कारण बने। मलाया की एक कथा के अनुसार, स्त्री-पुरूष के परस्पर आकर्षण का कारण संगीत बना।

संदर्भ-सूची :

1. भारतीय संगीत का इतिहास—डॉ0 वीणा शर्मा
2. भारतीय संगीत का इतिहास—जयदेव ठाकुर
3. भारतीय संगीत का इतिहास—उमेश जोशी
4. भारतीय संगीत का इतिहास—रामावतार वीर
5. भारतीय संगीत का इतिहास—शरतचंद्र श्रीधर परांजपे
6. बिहार की संगीत परम्परा—गजेन्द्रनारायण सिंह
7. संगीत चिंतन—रवीन्द्रनाथ ठाकुर
8. भारतीय संगीत का इतिहास—रविन्द्रनाथ बहोरे
9. भारतीय संगीत का इतिहास—जोगिन्द्र सिंह बावरा
10. भारतीय संगीत का इतिहास—राजीव द्विवेदी

संगीत की उत्पत्ति एवं विकास

ममता कुमारी

मनुष्य की अभिव्यक्ति में संगीत रचना अति प्राचीन है। बालक पैदा होते ही मुँह से स्वर निकालता है और मुद्राएँ बनाता है। अपनी अभिव्यक्ति के लिए इसमें सफलता भी पाता है, परंतु इससे वह आरंभ में साफ-साफ अपनी सब इच्छाओं को व्यक्त नहीं कर पाता। जैसे-जैसे बालक बढ़ता है वह इशारों, मुद्राओं तथा वह स्वरों और शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग करता जाता है। जब बालक पैदा होता है, तब वह उस वक्त कोई भाषा नहीं बोलता, उसे किसी भाषा का ज्ञान नहीं होता, वह सिर्फ रोता है। रोना हँसना भी तो संगीत की महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति है। बालक हँसने एवं रोने के द्वारा ही अपनी रूष्टता एवं प्रफुल्लता को प्रकट करता है। यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या बालक को संगीत आता है। संगीत उसको आता नहीं, किन्तु संगीत का उपकरण तो उसके पास है, जो कि सदैव क्रियाशील रहते हैं। स्वर का ज्ञान बालक को होता है। इसलिए वह इसके द्वारा अपनी भूख-प्यास की अभिव्यक्ति किया करता है। वास्तव में स्वर ही संगीत है, चाहे उसकी जो भी अवस्था हो।

इसी प्रकार आदिम-संगीत कला कलात्मक माध यम समाज की स्थिति का द्योतक है, इतना ही नहीं आदिम-संगीत तो तत्कालीन समाज की सही-सही अनुकृति भी है। बालक द्वारा उत्पन्न संगीत तो बहुत कुछ अपने ही आनंद तक सीमित रहता है। किन्तु आदिम संगीत के साथ सामाजिक तथ्य के ताने-बाने जुड़े रहते हैं। आदिम मनुष्य के नाचने, गाने में उसके समाज की तत्कालीन आवश्यकता प्रतिबिम्बित होती है।

संगीत मानव समुदाय के साथ इसके प्रारंभिक अवस्था से ही है, युगों के परिवर्तन के साथ इसके सम्बोधन में अंतर आया होगा ऐसा हो सकता है, लेकिन संगीत अभी उसी अवस्था में उपलब्ध था। सभ्यता के विकास के बाद से लेकर नाट्ययुग तक संगीत का अर्थ मुख्य रूप से गायन को ही माना जाता था। मध्य युग में आकर संगीत के अंतर्गत गायन, वादन तथा नृत्य को सम्मिलित कर लिया गया।

संगीत की उत्पत्ति एवं परिभाषा की दृष्टि से तीन परम्परायें हो सकती है :-

(1) भारतीय परम्परा (2) पाश्चात्य परम्परा (3) अरबी परम्परा।

(1) भारतीय परम्परा

संगीत की व्युत्पत्ति 'सम् गै-(गाना) क्त है, अर्थात् ''गै '' धातु में ''सम्'' (सं) एक अपव्यय है, जिसका व्यवहार समानता, संगति, उत्कृष्टता, निरंतरता, औचित्य आदि सूचित करने के लिए किया जाता है। अतः संगीत का अर्थ ''उत्कृष्टपूर्ण तथा औचित्यपूर्ण'' ढंग से गायन माना जाता है। भारतीय परम्परा के अन्तर्गत सभी विधाओं की उत्पत्ति में देवी देवताओं के मानने की परम्परा दिखायी देती है, विष्णु पुराण का निम्न श्लोक इसका उदाहरण हैः-

''काव्यलापाश्च ये केचिद गीत काव्य खिलानि-
शब्द मुनिधर स्यै पुर्विष्णों महात्मनः।।'

अर्थात् समस्त काव्य-चर्चा और राग-रागिनी

शोध छात्रा विश्वविद्यालय संगीत विभाग, ति0 मां0 भागलपुर वि0वि0, भागलपुर

आदि जो कुछ भी हैं, वे सब शब्दमूर्तिधारी परम्परा विष्णु के शरीर हैं। यहाँ शास्त्रकार ने संगीत एवं अन्य कलाएँ और उन सब का श्रोत परमात्मा को ही माना है, तथा इनके सभी रूपों को भगवान विष्णु माना है।

तावच्च ब्रह्माणों न्तिके हाहाहुहुसंज्ञाभ्यां संज्ञधपम्पिमति
तार्न नाम दिव्ये गंधिर्वभगीयत्।
तस्य त्रिमार्ग परियुतैरनेकयुग परिवृर्ति तिष्ठत्रपि रैवतश्चक्षृण्वन्मुहूर्तमिव मेने।।[2]

अर्थात् जिस समय ब्रह्मा जी के समीप हाहा और हुहु नाम के दो गंधर्व गान कर रहे थे उस संगीत का नाम अतितान था। (गान, संबंधि, चित्र, दक्षिण और धात्री नामक) त्रिमार्ग के परिवर्तन के साथ उसका विलक्षण गान सुनते हुए अनेक युगों के परिवर्तन काल तक ठहरनें पर भी रैवतली को केवल एक मुहूर्त ही बीता सा मालूम हुआ।

उल्लेखनीय श्लोक के अन्तर्गत संगीत की व्यापकता एवं सम्मोहन की ओर संकेत किया गया है। जिसके अन्तर्गत श्रोता को समय तथा काल परिवर्तन का बोध तक नहीं रह जाता वे सब बातें संगीत के प्रभाव की व्याख्या हैं।

प्राचीन संस्कृत वाड़ग्मय में संगीत का अर्थ सम्यक् गीतम् माना गया है।

'संगीतताललपवाधवं' गतापि मौलिस्थकुम्भ परिरक्षण धीर्नटीव ।।[3]

''सम्यक गीतम्'' के अन्तर्गत संगीत की परिभाषा स्पष्ट होती है व्यवस्थापूर्वक गाये हुए गीत से गायन का बोध होता है तथा व्यवस्था का अर्थ लय से है, लय का स्वरूप ही विभिन्न प्रकार के वाद्य से है। इस काल में संगीत का अर्थ केवल गाना ही माना जाता था। प्राचीन शास्त्र में गायन के लिए गीत शब्द का उपयोग किया गया है। यह गीत ही गाना था।

भारतीय संगीत में नाट्यशास्त्र के बाद मध्यकालीन संगीत ग्रंथों में ''संगीत रत्नाकार'' को प्रमुख ग्रंथ माना जाता है, रत्नाकर के रचना के पश्चात् सभी शास्त्रकार इनमें प्रभावित है जिसका सीधा प्रभाव उनके ग्रंथों में देखा जा सकता है। पूर्व में भी कहा गया है कि रत्नाकर से पहले गायन को ही संगीत समझा जाता था। शारंगदेव ने सर्वप्रथम अपने रत्नाकर में वह व्यवस्था दी गायन, वादन, तथा नृत्य इन तीनों के सम्मिलित स्वरूप को संगीत कहा है। जिसके पश्चात् आमतौर पर यह धारणा बनती गयी कि संगीत का अर्थ गायन, वादन तथा नृत्य इन तीनों के लिये किया जा सकता है।

''गीतं वाधं तथा नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते।
मार्ग देशी विभागेन संगीत द्विविधं मतम।।
मार्गों देशीति तदद्वेधा तत्र मार्गः स उच्यते।
यो मागितो विरिंच्याधैः प्रयुक्तों शरतादिभिः।।
देवस्य पुरतः शंभोनिर्यताभ्युदयप्रदः।
दशे-देशे जनानां पदुच्या हृदयरंजकम्।
गानं च वादनं नृत्यं तद् देशीयत्यभिधीयते।''[4]

उल्लेखित श्लोक के अन्तर्गत शारंगदेव ने संगीत की परिभाषा के अन्तर्गत बताया है कि गायन वादन तथा नृत्य ये तीनों ही संगीत के अलग-अलग अंग हैं तथा इनके सम्मिलित स्वरूप को संगीत कहा जाता है। संगीत को दो भागों में विभक्त किया गया है। पहला मार्गी संगीत दूसरा देशी संगीत। मार्गी संगीत के बारे में कहा गया है कि जो संगीत परमात्मा की प्राप्ति आदि के लिए आयोजित हो उसे मार्गी संगीत कहते है। जिनके प्रयोग की व्याख्या भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में किया है, देशी संगीत उसको कहा जाता है जिस संगीत का प्रयोजन मानव समाज में मनोरंजन के लिए किया जाये उसे देशी संगीत कहते हैं। अर्थात् जो संगीत देश काल के साथ जनरूचि के अनुसार अपना स्वरूप ग्रहण करे वही देशी संगीत है। देशी संगीत में जनसाधारण को प्रसन्न करने की क्षमता अवश्य होनी चाहिए।

2. पाश्चात्य परम्परा

पश्चिम में संगीत के लिए ''म्युजिक'' शब्द का प्रयोग किया जाता है। उसकी उत्पत्ति ''ग्रीक'' शब्द से मानते हैं। वस्तुतः इस शब्द का मूल ''म्यूज'' शब्द में है। ''ग्रीक'' परम्परा में यह शब्द उन देवियों के लिए प्रयोग किया जाता था जो विभिन्न

ललित कलाओं की अधिष्ठात्री मानी जाती है। यहाँ भी पहले 'म्युज' संगीत कला की ही देवी को माना जाता था, परन्तु समय के परिवर्तन के साथ सभी कलाओं, विज्ञान, दर्शन, ज्योतिषशास्त्र, आदि की संरक्षिकाओं को भी इन्हीं नाम से संबोधित किया जाने लगा। इन देवियों की संख्या नौ मानी जाती है, जो'जीयस' और ''निमोसनि'' की बेटियाँ हैं। ये सभी किसी न किसी ललितकला की देवी मानी जाती है, जिनके नाम क्रमशः है :- 1. महाकाव्य की देवी 2. इतिहास की देवी 3. गीत काव्य की देवी 4. संगीत की देवी 5. रासदी के देवी 6. भजनों की देवी 7. नृत्य की देवी। ग्रीक पुराण कथाओं में इनका संबंध उस चतुवर्णीय उत्सव से है लिकोन पर्वत पर रहने वाली अनेक देवियाँ उसमें भाग लेती थी।[5]

3. अरबी परम्परा

अरबी परम्परा में संगीत का समानार्थी शब्द ''मूसकी'' है इसकी उत्पति मूसिका शब्द से मानी जाती है। ''मूसिका को यूनानी भाषा में आवाज कहते हैं, इसलिये 'इल्मे मुसिकी'' (संगीत कला) ''आवाजों'' यानी ''रागों'' का इल्म में कहा जाने लगा।[6]

संगीत का विकास

संगीत के विकास को तीन शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जाता है। जो निम्न है :-

1. प्राचीन अर्थ

प्राचीन ग्रथों में संगीत शब्द का दर्शन नहीं मिलता हैं इस शब्द ''गाना'' तथा ''गीति'' के अर्थ में संगीत का प्रयोग होता था संगीत वांग्मय में संगीत 'व्युत्पत्ति परक' अर्थ भी 'सम्यक- गीतम' हुआ है।[7]

2. मध्ययुगीन अर्थ

द्वितीय चरण में गायन, वादन तथा नृत्य को संगीत कहा जाने लगा। मध्ययुगीन संस्कृत ग्रंथों में संगीत की परिभाषा में तीनों विधाओं को समाहित किया गया है। उदाहरणार्थ- 'गीतम वाद्यम तथा नृत्यम त्रयं संगीत मुच्यते'।[8]

3. आधुनिक अवधारणा

आधुनिक में आकर संगीत के पूर्वतीय परिभाषा में पर्याप्त परिवर्तन आ गया है। सच तो यह है कि संगीत के तीनों ही अंग अब इतने ही विकसित हो गए है कि उन्होंने अपना-अपना, अलग-अलग अस्तित्व स्थापित कर लिया है, और तीनों को इस समय स्वतंत्र कलाओं के रूप माना जाने लगा है। भारतीय संगीतकारों के अनुसार भी संगीत वर्तमान काल से गायन प्रधान कण्ठय और वाद्य संगीत के साथ छंद और ताल प्रधान अवनद्ध वाद्य की संगति को मिलाकर संगीत रूप में प्रचलित हुआ है। नृत्य को संगीत शब्द से पृथक कर महत्वपूर्ण कला के रूप में स्वीकार किया गया है।[9]

4. वर्तमान अवधारणा

वर्त्तमान भारतीय संगीत जगत पाश्चात् वाद्य प्रधान संगीत से अधिक प्रभावित है। वर्तमान युग में संगीत को और भी संकीर्ण कर के मात्र कण्ठ संगीत को ही संगीत के अन्तर्गत समझा जाने लगा है। वोकल म्यूजिक का अभिप्राय शास्त्रीय संगीत ही रहता है। जिसके अन्तर्गत ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी आदि की गायकी होती है। कण्ठ संगीत अथवा गायन की संगति वाद्यों (तानपुरा, सारंगी, तबला, आदि) के द्वारा होती है। परन्तु, वादन की स्थिति यहाँ गौण समझी जाती है। कारण, गायन के साथ वादन की संगति कण्ठ के स्वभाव के अनुकूल होती है जो स्वभाविक भी है, तथा गायन को ताल वाद्य अनुगम के सदैव अपेक्षा रहती है। ऐसी स्थिति में 'वादन' एक स्वतंत्र कला के रूप में नहीं उभरती बल्कि गायन की अनुगामी ही रहती है। आजकल वाद्य संगीत स्वंय एक विकसित कला के रूप में मान ली गयी है। वाद्य संगीत के तीन रूप प्रचलित हैं :-

1. अनुगामी वादन- इसके अंतर्गत वादन यंत्रो का प्रयोग गायन के सहयोग के लिए होता है चाहे वह शास्त्रीय संगीत हो सुगंम संगीत, हो अथवा

फिल्म संगीत जैसे- तबला, सारंगी, तानपुरा, आदि की संगति इसके अंतर्गत आते हैं।

2. एकल वादन- इसमें वादय यंत्र स्वतंत्र किसी राग या किसी गीत को प्रस्तुत करते हैं। पंडित रविशंकर (सितार), उस्ताद अली अकबर खाँ (सरोद), उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ (शहनाई), पंडित हरि प्रसाद चौरसिया (बासुरी), पंडित समता प्रसाद (तबला) आदि की कला प्रस्तुतियाँ इस श्रेणी में आती है।

3. वृन्द वादन- इसके नाम से ही यह स्पष्ट है कि इसमें अनेक वादय यंत्रो का सम्मिलित वादन होता है। एकल वादन, जिसे प्राचीन ग्रथों में ''शुष्क वादन'' कहा गया है। आजकल इतना विकसित हो गया है कि वह गायन की बराबर और कभी-कभी तो उससे भी अधिक लोकप्रिय प्रभावोत्पादक सिद्ध होता है। किसी रस विशेष अथवा परिस्थिति विशेषता वातावरण उपस्थित करने के लिए वादयों अथवा वादय वृंद का प्रयोग नाटकों, चलचित्र, आकाशवाणी आदि में सफलता पूर्वक किया जाता है। अपने महत्व एवं लोकप्रियता के कारण ही वादय संगीत ने कण्ठ संगीत से अलग अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया है। आज के ''रॉक'' एवं ''जॉज'' संगीत तथा डिस्को युग में तो यह सफलता की परम सीमा को स्पर्श करता प्रतीत होता है।

नृत्य- यह अपने आप में विकसित कला है। इसके भी कई रूप देखने में आते हैं।

1. शास्त्रीय नृत्य- इसके अंतर्गत कथक, भरतनाट्यम, कथकली, मणिपुरी, कुचिपुड़ी, ओडिसी, आदि नृत्य प्रकारों की गणना की जाती है।

2. सुगम नृत्य- सुगम गीतों पर भाव प्रदर्शन, नृत्य नाटिकाएँ आदि इसके अंतर्गत हैं ।

3. लोकनृत्य- अपने विशिष्टता तथा लोकशैली के अंतर्गत विभिन्न प्रदेशों में अनेक प्रकार के लोक नृत्य प्रचलित हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि संगीत को अपने वर्तमान स्वरूप तक आने में तीन परिस्थितिओं से गुजरना पड़ा।

संदर्भ-सूची

1. विष्णु पुराण।
2. विष्णु पुराण।
3. इशाधेष्टोत्तरशतोपनिषद् : निर्णयसागार प्रति, पृ0सं0-529
4. शारंगदेव, ंगीत रत्नाकर, पृ0सं-231
5. फहरंगे-आसाफिया (उर्दू कोष) भाग- 4, पृ0सं0-47, 8।
6. शारंगदेव कृत, संगीत रत्नाकर अध्याय1 श्लोक-3, पृ0सं0. 5।
7. दामोदर पंडित, संगीत दर्पण श्लोक- 3,पृ0सं0. 5।
8. शारंगदेव, संगीत रत्नाकर अध्याय1- श्लोक 24
9. राय चौधरी विमल कान्त, भारतीय संगीत कोष संपादन, पृ0सं0-150

मध्यकालीन संगीत साहित्य में सूफियों का सिद्धान्त

डॉ0 रश्मि पुरियार

सूफी सहित्य मध्यकाल के भक्तिकालीन परम्परा का एक अध्याय है। भक्तिकालीन संत सम्प्रदाय के संगीत को समझने के लिए समय की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर मनन करना आवश्यक है। हमारे देश में सगुण और निर्गुण ब्रह्म कि अवधारण को लेकर विवाद होता रहा है, इसी तरह वर्ण व्यवस्था जातिगत भेदभाव, ऊँच-नीच की भावना के विरोध में कई सम्प्रदाय सघर्षशील रहे है। इस सारे तथ्यों को ध यान में रखकर हम मध्यकालीन साहित्य में व्याप्त संगीत को स्पष्ट करने के लिए उसके दार्शनिक आधार को देखते हैं। मोटे तौर पर भक्तिकाल के साहित्य की दो धरायें मिलती है।

1. निगुर्ण ब्रह्म के उपासक संत साहित्य।

2. सगुण ब्रह्म के उपासक का भक्ति साहित्य।

इसके पश्चात निर्गुण काव्य धारा की भी दो साखये मिलती है।

(क) ज्ञान मार्गी संत सम्प्रदाय।

(ख) ज्ञान मार्गी सूफी संत सम्प्रदाय।

अब यहाँ चूँकि हमारा विषय सूफी संगीत पर आधारित है अतः हम सूफी सम्प्रदाय में संगीत की चर्चा करेंगें, जो कि मध्यकालीन काल में पाई गई थी।

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में जो इसकी शाखा है वह सूफी संतों की है। हिन्दी के सूफी संत कवियों में कुतुबन, मँझन, मलिक मोहम्मद जायसी, उसमान शेख नवी, कासिम साह, नूर मोहम्मद आदि के नाम से महत्वपूर्ण है। वास्तव में सूफी संतों की परम्परा भारतीय न होकर बाहर ईरान से आई है। सूफी-सम्प्रदाय में ईश्वर को निर्गुण और निराकार माना गया है। उसे नारी रूप में स्वीकार किया गया है। उसे पाने का इसलिए संतों ने इस परम्परा को प्रेम मार्गी कहा है।

हिन्दी साहित्य में सूफी संतों पर सर्वप्रथम आचार्य राम चंद्र शुक्ल ने सूक्ष्मता और विस्तार से विचार किया है। जायसी के ग्रन्थों की तो मीनों उन्होंने खोज ही डाली है। अन्ततः जायसी को शुक्ल जी ने हिन्दी सूफी कवियों का प्रतिनिधि माना है। सूफी सम्प्रदाय के कवियों के संगीत पर विचार करने के पूर्व उनकी उत्पत्ति और भारत में उनके विकास पर विचार करना आवश्यक होगा।

डॉ0 रामपूजन तिवारी ने सूफी मत के विषय में कहा है- इस संदर्भ में जितना फारसी कवियों ने प्रभावित किया है, उतना अरब देश के नहीं। ग्यारवी शताब्दी में फारसी साहित्य पर सूफी चिंता धारा प्रभाव दीखने लगा था।

अतः यह मान लेना चाहिए कि सूफी संतों का मूल स्थान फारस था जिसे ईरान और ईराक कहा जाता है।

भारत में सूफियों के आगमन के सम्बन्ध में संगीत के सुप्रसिद्ध विद्वान आचार्य वृहस्पति ने लिखा है कि ''मुसलमान सूफी हिन्दुस्तान में कठिन और दुर्गम मार्गों, गगनचुम्बी पवर्तो, और निर्जन वनों को पार करके ऐसे स्थानों पर पहुँचे जहाँ कोई इस्लाम और मुसलमानों के नाम से भी परिचित नहीं था।

अतः स्पष्ट है कि मुस्लिम सूफी उस युग में

अध्यक्ष, वि0वि0, संगीत विभाग, ति0 मां0 भागलपुर वि0 वि0 , भागलपुर

भारत में आये थे जब किसी मुस्लिम आक्रातों का पैर भारत की भूमि पर नहीं पड़ा था। ये भारत में आकर विभिन्न मार्गों से गुजरते हुए भारतीय भाषाओं से परिचय प्राप्त किया, हिन्दू समाज की दुवर्लताओं को समझा और जन साधारण के मन पर अधिकार करने के लिए अपने विचारों का प्रतिपादन उसी क्षेत्र की भाषा में किया। आचार्य वृहस्पति लिखते है कि भले ही सूफी संत किसी युग में बादशाहों से संबंध नहीं रखते हो परन्तु प्रसिद्ध शेख मुईनद्दीन चिश्ती अजमेरी मोहम्मद गोरी की सेनाओं के साथ भारत आये और अन्ततः अजमेर में बस गये। सूफी संत जिस लोक भाषा का प्रयोग करते थे उसे हिन्दी या हिन्दवी कहते थे। मलिक मोहम्मद जायसी ने 'अखरावट' में बताया है कि बड़े-बड़े सूफी संत् हिन्दी भाषा का व्यवहार करते थे, शेख मुईनुद्दीन चिश्ती के कव्वाल भारतीय भाषा में निवद्ध गीत गाते थे। उनके मुरीद अमीर खुसारो और हसन अल्लाह सजरी को हिन्दी काव्य रचना के लिए उन्होंने की प्रेरित किया था।

सूफी हिन्दी भाषा का प्रयोग सिर्फ आम लोगों तक अपनी बातें पहुँचाने के लिए किया करते थे। यही कारण था कि उन्होंने भारतीय लोकगीतों के छन्द भी अपनाये। उनकी रचनायें कब्वालों द्वारा गाई गई और उसमें भी प्रचारात्मक भावना ही निहित थी।

आचार्य वृहस्पति ने बताया है कि गुजरात में चिश्ती परम्परा का चलन कुतुवुद्दीन वख्तयार काकी के युग में स्थापित हुआ। इन्होंने इस परम्परा का प्रचार-प्रसार गुजरात में किया।

अतः स्पष्ट है कि सूफी सम्प्रदाय का आगमन भारत में पश्चिमी मुस्लिम देशों से हुआ था। इसमें ईरान का विशेष स्थान था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के जमाने में जो सूफी काब्य उपलब्ध हुये थे वे अवधी भाषा के प्रेमाख्यान काव्यों में जायसी, कुतुवन, मँझन आदि के काव्य उल्लेखनीय है। जायसी आदि के ग्रन्थ भी सूफी सम्प्रंदाय में गाने योग्य बनाई गई थी। उनके 'प्रदभावत' प्रबन्धकाव्य के बहुत सारे, पद इसके उदाहरण स्वरूप देखे जा सकते हैं।

ये मुसलमान होकर हिन्दुओं की कहानियाँ हिन्दुओं की ही बोली में पूरी सहृदयता से कह कार उनके जीवन की मर्मस्पर्शी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखाता है।

आचार्य वृहस्पति ने लिखा है, ये सूफी लोग
जात-पात पूछे न कोई।
हरि को गजे सो हरि को होई।।

जैसी बाते किया करते थे। उनके विचार भारतीयों को अपने अन्तर की प्रतिध्वनि प्रतीत होती थी और अन्ततः ये सरल भारतीय उनकी ओर खींचने लगे।

सूफी विचारों को लोकभाषा में व्यक्त करने वाला भक्त एवं भारतीय गायक शेख मोउनुद्दीन चिश्ती अजमेरी को सुलम हो गये। उन गायको का गाना सुनने के लिए भीड़ इक्कठा होने लगी। हिन्दु समाज द्वारा दलित और उपेक्षित व्यक्तिओं को, सूफियों को, उन दरवारों में स्थान मिला जहाँ राजा-रंक सब बारवर थे। और उनके व्यवहार से आहत होकर एक करोड़ भारतीय नारियों के गर्भ से उत्पन्न विदेशी मुसलमानों की संतान थे।

चिश्ती परम्परा के सूफी भारत में फैल गये थे। कभी मुस्लिम शासको ने इनका सहयोग लिया और कभी उन्हें सताया भी।

सूफियों की हिन्दी में जो गेय रचनायें बनी उन्हें भारतीय धुनों में भी गया गया। और इरानी धुनों का भी प्रयोंग किया गया। सूफी संगीतज्ञों की प्रचलित धुनों और रागों का वर्गीकरण ईरानी दृष्टि से भी किया गया। आज ख्याल का अर्थ कुछ भी माना जाय परन्तु भारतीय संगीत को यह सूफियों का देन है और इसका अर्थ वह रचना है जो कि एक विशिष्ट विचार प्रस्तुत करेः-

गीत में चार अंग होते हैं।
स्वर, शब्द, ताल, लय

स्वर शास्त्र के अंग मुकाम सिद्धान्त या थाट पद्धति का प्रचार भी सूफियों ने किया। मुकाम पद्धति ने संगीत ग्रन्थों में लोचन का रागतरंगिनी, अहोबल, का संगीत पारिजात रचनायें महत्वपूर्ण हैं। मुकाम पद्धति के दक्षिण में प्राप्त ग्रन्थों में स्वर मेल कलानिधि, संगीत सूर्योदय विशेष महत्वपूर्ण है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सूफी परम्परा में संगीत पद्धति का विकास हुआ। उसका दूर-दूर तक प्रसार और प्रचार हुआ। इनकी मुकाम पद्धति भी प्रभावित हुई।

आर्चाय वृहस्पति ने स्वरों की उत्तर भारतीय संज्ञा और मुकाम के अनुसार उन स्वरों के नामों का विवरण दिया है। इसके साथ ही मुकाम पद्धति के स्वरों का नामकरण रामामात्य ने अपने तरीके से किया जिसका उल्लेख भी वृहस्पति ने अपनी पुस्तक में किया है। उन्होने रामामात्य के विचारों का खण्डण-मण्डन भी किया। आर्चाय वृहस्पति के द्वारा प्रस्तुत स्वरों का विवरण इस प्रकार हुआ हैं

भारतीय संज्ञा	संज्ञा	संज्ञा
(1) षड़ज	शस्त	षडज
(2) कोमल ऋषभ	शहनाबाज़	शुद्ध ऋषभ
(3) चढ़ी ऋषभ	ढोका	शुद्ध गांधार
(4) कोमल गांधार	कुर्द	साधारण गांधार
(5) चढ़ी गांधार	सीका	च्युत मध्यम गांधार
(6) कोमल मध्यम	गिरका	शुद्ध मध्यम
(7) चढ़ी मध्यम	हिजाज़	च्युत पंचम मध्यम
(8) पंचम	नवा	पंचम
(9) कोमल धेवत	हिसार	शुद्ध धैवत (त्रिश्रुतिक)
(10) चढ़ी धैवत	हुसैनी	शुद्ध निषाद
(11) कोमल निषाद	अगन	कौशिक निषाद
(12) चढ़ी निषाद	नीम मोहुर	च्युत षडज निषाद

अतः कहा जा सकता है कि सूफियों का प्रभाव हमारे संगीत साहित्य पर काफी गहरा पड़ा है। आज भी इस गायकी को स्थान दिया जा रहा है, चाहे वह संगीत की गीतों में किया जा रहा है।

कवि जयदेव और विद्यापति द्वारा वर्णित राधा-कृष्ण

डॉली भारती

भारत में संत कवियों की विशेष भूमिका रही है, जिन्होंने भक्ति रस के पद लिखे। गेय रचनाओं की परम्परा वैदिक काल से ही प्रारंभ हो चुकी थी। उस समय से ही शब्दों एवं स्वरों के मेल से रचनाएँ की जाती हैं। भारतीय साहित्य में संगीत को माध्यम मानकर ग्रंथों की रचना मध्यकाल की विशेष उपलब्धि रही है। छन्द भावों का वाहक कहा गया है। छन्द लय निर्धारित करते हैं गीत द्वारा विशेष प्रसंग या भाव रस को चित्रि करने में सक्षम होते हैं। भारत के संत कवियों ने संगीत एवं साहित्य के बीच इतना मेल स्थापित कर दिया कि ये एक दूसरे के पूरक बन गए। मध्यकाल में विकसित भक्ति-संगीत में काव्यात्मिकता एवं संगीतात्मिकता दोनों का समावेश है।

कवि जयदेव एवं मैथिल कोकिल विद्यापति महान संतो के आराध्य देव हुए 'श्री कृष्ण'। इन्होंने कृष्ण-लीला को अपना विषय माना और अदभुत काव्य रचनाएँ की। सूरदास के पद ''मैया मोरी मैं नहीं माखन खायो'' में वात्सल्य, मीरा बाई की पक्तियों में ''मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई'' में पूर्ण सर्मपण का भाव है।कबीर ने निर्गुण रूप को उतारा है।

स्वामी हरिदास ने नाद ब्रह्म की उपासना की। चैतन्य महाप्रभु ने कीर्तन द्वारा कृष्ण को पुकारा। विद्यापति ने यद्यपि महादेव, गंगा भगवती के भी अनेकों पद लिखें हैं तथापि शृंगार रस का आधार इन्होंने राधा-कृष्ण को ही माना।

कवि जयदेव ने 12वीं शताब्दी में गीति काव्य (गीत-गोविन्द) की रचना की इस कृति के प्रबन्ध-सौन्दर्य ने विश्व साहित्य में अपना अमूल्य स्थान प्राप्त किया। उनके इष्ट देव विष्णु थे जिनके अवतार श्री कृष्ण पर यह गीति काव्य लिखा गया। जयदेव पश्चिम बंगाल के वीरभूमि में राजा लक्ष्मण सेन के दरबारी कवि थे। पं0 जयदेव के अनुसार संगीत एक मोहक कला है, जो जनसाधारण के मन को आकर्षित करती है। भारतीय संगीत में राधा-कृष्ण प्रेम गीत गीत के अनुपम भण्डार देखने को मिलते हैं। संगीत वह माध्यम हैं, जिसमें श्रीकृष्ण की गोपिकाओं के साथ रासलीला, राधाविषाद वर्णन, कृष्ण के लिए व्याकुलता, श्री कृष्ण की राधा के प्रति उत्कष्ठा का वर्णन किया है।

जयदेव के कृष्ण मानव कृष्ण हैं। उनमें वैसी ही वेदना है, यातना है जैसा कि राधा में। गीत गोविन्द के राधा पूर्ण यौवन है, वह पार्थिव प्रेम की प्रतिमा नहीं अपितु भक्ति की संचारिणी कल्पलता है। वह सिर्फ कृष्ण के लिए है और कृष्ण को पल भर के लिए भी अलग नहीं करना चाहती। किन्तु गीत गोविन्द का कृष्ण बड़ा ही धोखेबाज प्रतीत होता है। जैसे कि वह राधा से मिलने का समय देकर अन्य गोपियों के पास चला जाता है। इस बात को राधा की सखी उसे बताती है तो राधा व्याकुल हो उठती और प्रियमिलन की लालसा से अपने प्रिय कृष्ण से मिलने चल देती है।

इस तरह जयदेव के इस ग्रंथ का अध्ययन करने से पता चलता है कि मानो उन्होंने कामशास्त्र का भली प्रकार अध्ययन है। श्री कृष्ण और राधा दोनों ही एक दूसरे से असीम प्रेम करते थे। ठीक वैसे ही भारत की विभूतियों में विद्यापति अमूल्य

शोध छात्र संगीत विभाग, ति0 मां0 भागलपुर वि0 वि0 , भागलपुर

धरोहर है। विद्यापति ने मैथिल, अवहट्ट प्राकृत और देशी भाषाओं में चरित काव्य और गीति पदों की रचना की। इनके काव्य में वीर, शृंगार, भवित के साथ-साथ देशी भाषाओं में चरित काव्य और गीति पदों की रचना भी मिलती है। लेकिन इनका 'राधा-कृष्ण' से संबंधित मैथिल भाषा में निबंद्ध पदों का संकलित रूप 'विद्यापति-पदावली' के नाम से विख्यात है। इनके पदों में 'राधा-कृष्ण' के प्रेम के (संयोग-वियोग) दोनों पक्षों का शृंगारिक और मार्मिक वर्णन है।

इनके पदों में राधा को मुख्य नायिका का स्थान दिया हैं, उसमें भी नख शिख वर्णन प्रमुख है।

देख-देख राधा रूप अपार
अपरूष के विहि आनि मिराओत,
अगहि अंग अनंग मुरझायत
हेरय पडय अधीर।

विद्यापति की राधा शुरू से अन्त तक सुन्दर किशोरी है। विद्यापति की राधा के रूप चरित्र में कुछ ऐसा है जो विद्यापति ही प्रस्तुत कर सकते हैं। राधा उनके सम्पूर्ण मानस सौन्दर्य का धन विग्रह है।विद्यापति की राधिका के जीवन का प्रथम क्षण उस समय आरंभ हुआ जब कृष्ण ने ऐसी अपरूप बालिका देखी, जो यौवन के आकस्मिक आगमन दर पर आश्चर्य कर विविध प्रकार के आनद में विभोर हो जाती है। राधा के रूप को कृष्ण विजड़ित चित्त से देखते रह गए, किन्तु एक क्षण का यह मिलन पीड़ा का नया संसार दे गया। राधा के रूप की वह झलक हृदय को तीर की तरह चीरती चली गई। वे उसे अच्छे तरह देख भी न सके। राधा भी जब अपनी सखि से जब कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करने लगी तो उसे विश्वास भी नहीं हुआ कि ऐसा रूप कहीं सम्भव भी हो सकता है -

ए सखि पेखलि एक अपरूप
सुनइति मानव सपन स्वरूप
कमल जुगल पर चाँदक माल
तापर उपजल तरून तमाल
तापर बेढ़लि बीजुरि लता
कालिन्दि तट घिरें-घिरे जाता
साखा सिखर सुधाकर पाँति
ताहि नव पल्लव अरूनक कांति
विमल बिम्ब-फल जुगल विकास
तापर कीर थीर करू बास
तापर चंचल खंजन-जोर
तापर सांपिनि झांपल मोर
ए सखि रैंगिनि कहल निसान
हेरइत पुनि मोर हरल गेआल।
सुपुरूष मरम तोहें भल जान।
कवि विद्यापति एह रस मान
सुपुरूष मरम तोहें भल जान।

इस कविता में वर्णन है कि श्री कृष्ण को यमुना के तट पर देखकर राधा उनके अपार सौंदर्य पर मोहित हो गई और इसी अपार सौंदर्य को हमने देखा है, जिसे सपने में देखा हुआ सौंदर्य कहा जा सकता हैं, कमल के समान सुंदर चरणों के चंद्रमाओं के समान सुंदर नखों की पंक्तियाँ सुशोमित हो रही थी, उसके ऊपर तरून तमाल जैसा युवा श्याम शरीर सुशोमित था एवं उस पर बिजली के समान दिव्य पीताम्बर लिपटा हुआ था, वह धीरे-धीरे यमुना-तट पर जा रहा था। हाथ की ऊँगलियाँ भी चंद्रमा के समान पंक्तिबद्ध थी, उस पर नवीन पत्तों की लाल ज्योति खंजन-नेत्र जैसा नेत्र था, उस पर मोर मुकुट सुशोभित था। सर्पिणी के समान केश था। उसे देखते ही, उसने मेरे ज्ञान का हरण कर लिया। मैं तो सुधि-बुधि खो बैठी। विद्यापति कहते हैं कि मुझे अनुमान है कि तुम सत्पुरूष (श्रीकृष्ण) के रहस्य को अच्छी तरह से जानती हो।

भारतीय परिवेश में राधा-कृष्ण बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। प्रकृति से लेकर समस्त मानव जीवन-शैली में राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाएँ व्याप्त है। राधा और कृष्ण का प्रेम यह इंगित करता है कि द्रव्य और रस को अलग करके नहीं जाना जा सकता। रस को जानने के लिए द्रव्य को माध्यम तो बनाना ही पड़ेगा।

राधा कृष्ण प्रेम के बारे में कई विद्वानों ने यह भी कहा है कि इनके प्रेम की गति अगम और इसका स्वरूप कठिन से कठिन है। इस प्रेम का

अनुभव कभी मिलन कभी वियोग तो कभी संयोग मिश्रित रूप से होता है। किन्तु इसे वही जान सकता है जिसको इसका कभी अनुभव हुआ होगा। जैसे -

"प्रेम अटपटी बात कछु, कहत बने नहीं बैना।
कै जाने मन की दशा, कै नेही के नैन।।

राधा कृष्ण की मधुर लीलाएँ विविध हैं, कभी कृष्ण प्रिया के साथ ह्रास करने के लिए उनके आभूषणों को उतारते हैं और फिर पहना देते हैं। कभी उसके कपोलों का मृदंगम से चित्रित करते हैं। कभी मिटा देते है, दूसरी ओर राधा को प्रियतम के इस स्पर्श से अत्यधिक सुख मिलता है।

कृष्ण ने राधा के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए, उन्हें स्त्री-जाति के रत्न के रूप में स्वीकार किया है। कृष्ण की अल्हादिनी शक्ति होने के कारण राधा-कृष्ण का प्रेम रूप स्वीकार की गई है। ये कृष्ण का आल्हादान करती हैं। इसी कारण इन्हें "आल्हादिनी" ऐसा नाम दिया गया है। स्वयं कृष्ण राधा रूप आल्हादिनी शक्ति का आश्रय लेकर भक्तों का पोषण करते हैं। कृष्ण की इच्छाओं की पूर्ति राधा की एक मात्र अराधना है। अपने इस आराधना भाव के कारण ही राधा को पुराणों में राधिका नाम दिया गया है। गोविन्द ही राधिका के सर्वस्व हैं, हर समय कृष्ण का ही स्मरण करती है। इस प्रकार राधा-कृष्णमयी हैं। कृष्ण के प्रति राधा का प्रेम अपूर्व है। स्वयं कृष्ण इस प्रेम के वशीभूत है, संसार को तृप्त करने वाले होने पर भी उन्हें राधा के प्रेम से तृप्ति मिलती है। यही कारण है कि कृष्ण रास में राधा के प्रेमवश अन्य गोपियों को छोड़कर राधा के पीछे-पीछे जाते है।

राधा कृष्ण की मुख्य शक्ति है, इस कारण जिस प्रकार श्री कृष्ण अपनी लीला के विस्तार हेतु विभिन्न अवतार ग्रहण करते हैं। इसी प्रकार राधा भी अपने अवतार को बदलती रहती है। राधा और कृष्ण का यह प्रेम उदाप्त होकर लोक सेवा, परोपकार और सर्वभूताहित में परिणित हो जाता है।

संदर्भ-सूची :

1. डॉ0 रामचन्द वर्मा शास्त्री - जयदेव गीत गोविन्द, पृ0 -6
2. डॉ0 शिव प्रसाद सिंह विद्यापति - पृ0 - 245
3. बलदेव उपाध्याय - संस्कृत साहित्य का इतिहास
4. रामवृक्ष बेनीपुरी - विद्यापति पदावली
5. श्रीमती कृष्णा शर्मा - विद्यापति और सूर काव्य में राधा
6. डॉ0 नरेन्द्र झा - विद्यापति पदावली

विभिन्न जातियों के संस्कारों में प्रचलित संस्कार गीत (अंग प्रदेश के संदर्भ में)

सुप्रिया कुमारी

हिन्दू धर्म भारत का सर्वप्रथम धर्म है। इसमें पवित्र सोलह संस्कार संपन्न किए जाते हैं।

हिन्दू धर्म की प्राचीनता एवं विशालता के कारण ही उसे 'सनातन धर्म' भी कहा जाता है।

बौद्ध, जैन, ईसाई, इस्लाम आदि धर्मों के समान हिंदू किसी भी व्यक्ति विशेष द्वारा स्थापित किया गया धर्म नहीं, बल्कि प्राचीन काल से चले आ रहे विभिन्न धर्मों एवं आस्थाओं का बड़ा समुच्चय हैं महर्षि वेदव्यास के अनुसार मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक पवित्र सोलह संस्कार संपन्न किए जाते हैं जो निम्नानुसार हैः-

(1) गर्भाधान संस्कार
(2) पुंसवन संस्कार
(3) सीमंतोन्यायन संस्कार
(4) जातक्रम संस्कार
(5) नामकरण संस्कार
(6) निष्क्रमण संस्कार
(7) अन्नप्राशन संस्कार
(8) चुड़ाकर्म संस्कार
(9) कर्णवेध संस्कार
(10) यज्ञापवीत संस्कार
(11) वेदारंभ संस्कार
(12) केशांत संस्कार
(13) समावर्त्तन संस्कार
(14) विवाह संस्कार
(15) आवसश्याधाम संस्कार
(16) श्रोताधाम या अंयेष्टि संस्कार

इस प्रकार हिन्दू धर्म के सोलह संस्कार किए जाते है।

अंगक्षेत्र के अंतर्गत हिन्दू धर्म के विभिन्न जातियों में विभिन्न संस्कार प्रचलित है। हिन्दू धर्म में चार कुल माने गए हैं।

(1) ब्राह्मण (2) क्षत्रिय (3) शूद्र (4) वैश्य

इन्हीं चारों कुल के अंतर्गत सभी जाति आते हैं। इनके अपने-अपने संस्कार होते हैं जैसे-

- गर्भाधान संस्कार - यह संस्कार चारो कुल में किसी जाति में होता है।
- पुंसवन संस्कार - यह संस्कार भी चारों कुल में होता है।
- जातक्रम - यह संस्कार चारों कुल के सभी जातियों में होता है।
- नामकरण संस्कार - यह संस्कार चारों कुल के सभी जातियों में होता है।
- कर्णवेध - यह संस्कार चारों कुल के किसी न किसी जातियों में होता है।
- यज्ञोपवीत - यह संस्कार ब्राह्मण, राजपूत, क्षत्रिय कुल के जातियों में होता है।
- वेदारंभ - वैसे तो यह संस्कार चारों कुल में होने लगा है। परन्तु यह संस्कार ब्राह्मण कुल के जातियों में होना अत्यंत जरूरी है।
- विवाह - यह भी चारों कुल के सभी जातियों में होते हैं। विवाह संस्कार भी कई प्रकार के होते हैं जो हरके जाति के अनुसार होता है।
- केशांत - यह संस्कार सभी कुल के जातियों

शोध छात्रा, विश्वविद्यालय संगीत विभाग, तिलका माझी भागलपुर, विश्वविद्यालय भागलपुर

में होता है।

- चूड़ाकर्म - यह संस्कार सभी कुल के जातियों में होता है।?
- अन्नप्राशन - यह संस्कार सभी कुल के जातियों में होता है। मगर यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैय कुल के जातियों में होना जरूरी होता है।
- श्रोताधाम - यह संस्कार सभी कुल के जातियों में होता है।

अंगक्षेत्र की विभिन्न जातियों में प्रचलित संस्कार गीत

संस्कार गीतः- बालक-बालिकाओं के जन्मोत्सव आदि अवसरों पर गाये जानेवाले संस्कार गीत हैं- सोहर, खेलौना, कोहवर, समुझ बनी आदि।

हमारे यहाँ संस्कारों की संख्या सोलह मानी गई। जैसे- गर्भाधान, मुंडन, पुंसवन आदि। इनमें अंतिम संस्कार मृत्यु है। सभी जाति में अपने-अपने संस्कार के अनुसार संस्कार गीत गाये-बजाए जाते हैं। यहाँ कुछ चुने हुए जातियों के संस्कारों के अवसर पर गाए जानेवाले गीतों के उदाहरण दिए जा रहे हैं। हिन्दू धर्म में चार कुल माने गए हैं-

(1) ब्राह्मण (2) क्षत्रिय (3) शूद्र (4) वैश्य। इन्हीं चारों कुल के अंतर्गत सभी जातियाँ विद्यमान हैं। इनमें से कुछ जातियों के संस्कार गीत इस प्रकार है।

मुंडन संस्कार गीत- संस्कृत में इस संस्कार को 'चूड़ाकरण' कहते हैं। इसके पीछे दो तर्क दिए जाते हैं- पहला, सूतक के कारण बच्चे के बाल अशुद्ध रहते हैं। इसलिए जन्म से पहले, तीसरे, पाँचवे, सातवें वर्ष में मुंडन करा देना चाहिए। दूसरा बच्चा के जन्म के लिए इस आशय का एक गीतांश देखा जा सकता है।

मचिया बैठलि तोहें सास,
कि सासू से आज करू हे।
ललना रे, करव में होरिला के मूड़न कि
कहाँ-कहाँ नेवतब हे।
पहिले जो नेतिह,
देवलोक तबै पितरलोक हे।
ललना रे, तबे जे नेतिह, लोक, तबै समाज लोक हे।

यादव (ग्वार) जाति में मुंडन संस्कार गीतः-

आजु मुंडनऽ होइतै जटाधरिया के।
जटाधरिया के हो रेसम केसिया के।।
लम्बे-लम्बे लट लटकलऽ सोभे गालऽ पे।
भौंउरा मड़रावें, पीसी रानियाँ है लटधरिया के।
होन्हैं मँड़रावै, पीसी रानियाँ है लटधरिया के।
आजु मुंडनऽ होइतै जटाधरिया के।

विवाह संस्कार गीत- सोलह संस्कारों में यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संस्कार माना गया है। इस संस्कार के भी कई चरण होते हैं, जैसे- तिलक, कन्यादान, मंडपपूजन, उबटन, सिन्दूरदान, गौना, बेटी-विदाई इत्यादि। सभी चरणों के लिए अलग-अलग लोकगीत गाए जाते हैं। इस गीत का स्वर अत्यन्त मार्मिक है।

पंडित जाति में विवाह संस्कार गीत-(सिन्दूर दान)

पंचधौरिया सेनुरा दान करऽ।
सिव, गौरी के कलियान करऽ।।
चनन लकड़िया के बनलऽ पंचधौरिया।
वहीं बीच लाले-लाल लटबा सेनुरिया।।
पाँचों अँगुरिया चुटकी माँग करऽ।
सिव, गौरी के कलियान करऽ।।

जनेऊ संस्कार गीत- 'यज्ञोपवीत' का अपभ्रष्ट रूप जनेऊ है। यज्ञोपवीत का शाब्दिक अर्थ होता है- याज्ञिक, उपकीत अर्थात सूत्र।

इसे उपनयन भी कहते हैं। इसका शाब्दिक अर्थ होता है गुरु के समीप ले जाया जाना अर्थात जनेऊ संस्कार के बाद विधिवत् रूप में गुरू के समीप (विधाध्ययन हेतु) बालक को ले जाया जाता था।

राजपूत जाति में जनेऊ संस्कार गीत-

बाबा द द जनेउआ हमें बराहमन बनबऽ हो।
दूध-दाँत टूटलऽ छौं नें तोरऽ
केनाक देभौ हो
तोरा गरबा जनेउआ केनाक देभौ हो।

बाबा.....

मालाकार (माली-मालिन) विवाह एवं उपनयन संस्कार गीत-मालिन गीत

जात के मलिनियां हो बाबू जात के मलिनियाँ।।
कौन फूल फूलै गे मालिन भोर भिनसरवा
कौन फूल फूलै आधी रात।। जात के।।
बेबी फूल फूलै गे मालिन भोर भिनसरवा
चम्पा फूल फूलै आधी रात।। जात के।।

अम्बष्ठ (लाल) जाति में विवाह-संस्कारगीत (परछन गीत)

आबऽ आबऽ देखऽ सखि हे अवधपुरी के बरात।
डोलिया प बैठलऽ दुलाहा, हाथ प सकल समाज।
आबऽ आबऽ ददिया सासू हे परछी ले तो दमाद।
छूरियों न पइभ मूरतिया यें दिनों के बाद।

इसी तरह सभी जातियों में अलग-अलग संस्कार गीत होते हैं। किसी-किसी के संस्कार एक-दूसरे से मिलते हैं तो किसी-किसी के एक-दूसरे से भिन्न हैं।

हिन्दी के गीति नाट्य : परंपरा एवं प्रयोग

संगीत कुमार झा

नाटक शब्द की उत्पति संस्कृत के नट् धातु से हुई है; जिसका अर्थ अभिनय करने वाला व्यक्ति होता है। इसे दूसरे शब्दों में दृश्य-श्रव्य काव्य भी कहा जाता है। साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में यह एक दुधारी विधा है, क्योंकि नाट्य एक साहित्य भी है और रंगमंच भी।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में यदि हम नाट्य की साहित्येतिहास पर दृष्टिपात करें तो इसके आदि पुरूष के रूप में भरत मुनि सहज रूप से सामने आते हैं, जिन्होंने नाटक को पंचम वेद की संज्ञा दी। इन्होंने नाटक को इस प्रकार परिभाषित किया है -

''यस्मात्स्वभावं संहत्य साड़ गोपाड़-गगतिध्यैः? अभिनीयते गम्यते च तस्माद्वै नाटकं स्म तम।''

अर्थात जब सब अंगों, उपांगों और गतियों को क्रम से व्यवस्थित करके उसका अभिनय किया जाता है और दर्शकों तक पहुघ्चाया जाता है तब उसे नाटक कहा जाता है।

इस प्रकार नाटक की प्रासंगिकता साहित्य में क्या है? और क्या होना चाहिए की स्थिति का आभास गंभीर रूप से होता है। नाट्य लेखन की संस्कृत साहित्य में समृद्ध परंपरा रही है। प्राचीन काल में भास, भवभूति, कालिदास, विशाखदत्त, शूद्रक, भट्टनारायण एवं राजशेखर जैसे नाटककारों ने इस विधा को अत्यंत गरिमामयी स्वरूप प्रदान किया।

अब यदि हम नाटक के गीति स्वरूप पर चर्चा करें तो इसके बीज अत्यंत प्राचीन काल से दिखाई पड़ते हैं। चारों वेदों में सामवेद को आर्य जाति का आदिगान कहा जाता है, तथा वेदों की ऋचाएँ भी संगीतमय ही है। इसके पश्चात उपनिषद, रामायण, महाभारत जैसे महाकाव्यों में भी गीतात्मकता उसका प्राणतत्व है। इसीलिए इन महाकाव्यों से प्रेरित प्राचीन संस्कृत नाटककारों ने भी अपने नाटकों में गीतात्मकता को सहज स्वरूप में अपनाया है।

वर्तमान युग संदर्भ में यदि हम साहित्य की अत्यंत महत्वपूर्ण विधा नाटक पर दृष्टिपात करें तो इसके गद्य स्वरूप से इघर इसका पद्यात्मक स्वरूप भी खासा प्रभाव लिए हुए है जो कई हिन्दी नाटकों में अपनी उत्कर्षता को प्राप्त हुई है। जिसे हम सामान्य साहित्यिक शब्दों में गीति नाट्य कहते हैं।

गीति नाट्य - गीति और नाट्य दो शब्दों से मिलकर बना है। यह इन दो शब्दों से मिलकर ही नहीं बना बल्कि यह दोनों शब्दों के तत्वों की मिली-जुली सामंजस्यपूर्ण अभिव्यक्ति भी है। गीति नाट्य को यदि हम ये कहें कि यह गीतात्मकता और नाटकत्व दोनों की औरस संतान है तो अत्युक्ति न होगी। यह गेय भी है और अभिनेय भी। किन्तु इसके भीतर गेयता और अभिनेयता इस प्रकार अविभाज्य रूप से मिले रहते हैं कि हम इसे गीत अथवा नाटक का प्रभेद या उपभेद नहीं मान सकते। 'इसकी साहित्य के क्षेत्र में उस बालक की तरह स्वतंत्र सत्ता है, जिसमें माँ-बाप के रूप और गुण तो प्रतिबिंबित होते हैं, पर फिर भी व्यक्ति के रूप में वह अलग गिना जाता है।'[1]

गीति नाट्य में यदि हम परंपरा एवं प्रयोग की दृष्टि से विचार करें तो यह गीति के तत्वों यथा -

अंशकालीन प्राध्यपक, जे0 एन0 बी0 ए0 एस0 पी0 जी0 कॉलेज लगमा, दरभंगा

तरलता, संगीतात्मकता, लयात्मकता, छंदोबद्धता आदि के अतिरिक्त काव्य के अनेक तत्वों को भी अपने में समाहित कर लेता है। 'नाटक के कल्पना, चिंतन, अनुभूति, प्रतीक आदि तत्व भी अनिवार्य रूप में इसमें समाहित है। लोक-साहित्य, गीति नाट्य की प्रेरणा का स्त्रोत कहा जा सकता है।'[2]

अब हम मूल रूप से हिन्दी में गीति नाट्य की विकास प्रकिया को परंपरा एवं प्रयोग की दृष्टि से देखने का प्रयास करेंगे, जिससे गीति नाट्य के व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक पक्ष को मोटे तौर पर समझा जा सके। इस संदर्भ में हिन्दी के कुछ प्रमुख गीति नाट्य का शोधपरक दृष्टि से विश्लेषण करना होगा, जो इस प्रकार है-

भारतेंदु हरिश्चंद्र लिखित 'भारत दुर्दशा' सन्1880, को स्वयं भारतेंदु ने नाट्य रासक कहा है, जो गीति नाट्य का एक रूप है। इस नाटिका के माध्यम से नाटककार ने भारत की दुर्दशा करने वालों का यथार्थ रूप प्रस्तुत कर जनता में जन-चेतना का किस तरह प्रवाह हो, यह प्रयास किया है। इस नाटक में संवाद लंबे हैं, परंतु शिथिलता नहीं है। भाषा सरल, पात्रानुकूल एवं मुहावरों से समन्वित है। कथावस्तु, वस्तु विन्यास तथा शिल्प के पाश्चात्य प्रभाव हैं। व्यावहारिक तौर पर देखें तो 'भारतेन्दु काल में नाटकों की रचना का मूल उद्देश्य मनोरंजन के साथ ही जनमानस को जाग्रत करना और उसमें आत्मविश्वास उत्पन्न करना था।'[3]

जयशंकर प्रसाद कृत 'करूणालय'1913, हिन्दी का बहुचर्चित गीति नाट्य है। इसका महत्व गुणात्मक दृष्टि से नहीं परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से है यह नाटक बांग्ला के 'ब्लेकवर्स' के आधार पर अतुकान्त माञ्कि छन्द में लिखा गया है। इस नाटक में काव्यत्व और नाटकत्व का मिश्रण तो है, किंतु गीति नाट्य के अधिकशं पक्षों का सम्यक निर्वाह नहीं किया गया है। 'करूणालय' वैदिक काल की घटनाओं का रूपांतर है। वैदिक काल में प्रचलित यज्ञ में बलिकर्म की करूणा हीनता को प्रसाद जी ने बखूबी अभिव्यक्त किया है। ऐसा सहज प्रतीत होता है कि 'हिन्दी नाटक में प्रसाद के आने से गुणात्मक परिवर्तन होता है। सीधी-सपाट भाषा की तुलना में लाक्षणिक और अधिक अर्थ संपन्न भाषा का प्रयोग होने लगता है।'[4]

सियारामशरण गुप्त के गीति नाट्य 'कृष्णा' (1921), राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत एक ऐतिहासिक गीति नाट्य है। जिसमें कृष्ण के आत्मबलिदान के मार्मिक प्रसंग को प्रस्तुत किया गया है। 'कृष्णा' गीति नाट्य में उच्चकोटि का मानसिक संघर्ष है जो गीति नाट्य का एक मूल तत्व भी माना जाता है। माँ की ममता और वात्सल्य का बड़ा सुंदर वर्णन इस नाटक में किया गया है। वहीं पिता का हृदय एक ओर राष्ट्र रक्षा की दीवालों से टकराकर चूर हो जाता है। अंतर्द्वन्द्व और मानसिक कार्यकलाप इस नाटक का साकारात्मक पक्ष है।

हरिकृण प्रेमी के 'स्वर्ण विहान' गीति नाट्य में कथ्य के रूप में राष्ट्रीय आंदोलन का भावबोध है जो भारतीय जनता की वीर भावनाओं को दर्शाता है। इस नाट्य में कवि की व्यक्तिगत भावनाओं ने उदात्त रूप धारण करके मानवता को सत्य एवं अहिंसा का संदेष दिया है। इस नाटक के संबंध में प्रेमी जी ने स्वयं लिखा है- 'जब मैं केवल दो वर्ष का शिशु था, तभी मेरी स्नेहमयी माँ मुझे कवि बनने के लिए अकेला छोड़कर चली गई। तब माँ के आंचल की जगह विराट आकाश था और गाँव की जगह विस्तृत वसुंधरा। मेरा वह करूण विहान ही इस स्वर्ण विहान का प्रेरक है।'

सेठ गोविन्ददास ने 'स्नेह या स्वर्ग' (1936), नामक एक उत्कृष्ट गीति नाट्य की रचना की। इसकी कहानी होमर के यूनानी काव्य ईलियट से ली गई है। लेखक ने स्वयं अपनी रचनाओं में उसका रूपान्तर किया है। वे रचना के निवेदन में कहते हैं- 'यह नाटक यूनान के महाकवि होमर के महाकाव्य ईलियट की कथा को भारतीय रूप देकर लिखा गया है।'[5]

सेठ गोविन्ददास के इस गीति नाट्य का मूल विषय प्रेम है। एक नारी (स्नेहलता) दो ऐसे पुरूषों, जिसमें एक धरती का वासी (अजेय) है और दूसरा इन्द्र का पुत्र जयंत स्वर्गलोक का रहने वाला है, के बीच प्रेम विषयक चयन संघर्ष का विषय है और नाटक का प्रधान पात्र बनी स्नेहलता इन्द्रपुत्र जयंत

को न चुनकर धरती पर रहने वाले अजेय को स्वीकार लेती है। कथानक का यही मूल स्वरूप नाटक में विकसित होता चला गया है।

सुमित्रनंदन पंत मुख्यतः कवि हैं, इसीलिए उन्होंने गद्यनाटकों का सृजन न करके काव्य अथवा गीति नाट्यों की रचना की है। इनके गीति नाट्य संग्रहों के नाम हैं- 'शिल्पी', 'ज्योत्सना', 'रजत शिखर' और 'सौवर्ण'। ये कृतियाँ रेडियों को दृष्टि में रखकर लिखी गई है। इन नाटकों में छन्द नाटकों की विशेषताओं के अतिरिक्त रेडियो नाटक की सुविधाओं का ध्यान रखा गया है।

उदयशंकर भट्ट हिन्दी में गीति नाट्य को प्राण-प्रतिष्ठा करने वाले अग्रणी लेखकों में से एक हैं। इन्हें हिन्दी गीति नाट्य का टी0 एस0 ईलियट भी कहा जाता है। इन्होंने सैद्धांतिक विवेचन एवं व्यावहारिक सृजन द्वारा हिन्दी गीति नाट्य को नई दिशा और रूप दिया है। इन्होंने कई नाटकों की रचना की, इनमें प्रमुख हैं- 'मत्स्यगंधा', 'विश्वामित्र', 'राधा', 'कालिदास', 'मेघदूत', 'विक्रमोर्वर्षीय' और 'एकला चलो रे'। इनमें 'विघ्वामित्र' गीति नाट्य अत्यंत प्रसिद्ध है जो विश्वामित्र और मेनका के प्रसिद्ध पौराणिक आख्यान पर आधारित है। इस नाट्य में महर्षि विघ्वामित्र के कठोर तप और मेनका के साथ वासनात्मक प्रेम की पृष्ठभूमि पर नारी और पुरूष के संघर्ष और पुरूष के अहं की पराजय का बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण हुआ है।

विशिष्ट साहित्यिक पत्रिका 'धर्मयुग' के संपादक डॉ0 धर्मवीर भारती ने गीति नाट्य के क्षेत्र में स्तुत्य सफलता प्राप्त की है। भारती जी का 'अंधायुग' हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ गीति नाट्य माना जाता है। इस रचना के पूर्व जो भी गीति नाट्य लिखे गये वह काव्य अथवा गीति नाट्य के सभी मापदंडों पर खड़े नहीं उतरते थे परंतु 'अंधायुग'(1954), ऐसा प्रथम गीति नाट्य है जो गीति नाट्य के लगभग सभी कसौटी पर खड़ा उतरता है।

'अंधायुग' में महाभारत के उत्तरार्द्ध की घटनाओं का आधार लेकर युद्धोपरांत उत्पन्न बाह्य और आंतरिक समस्याओं का मानसिक स्तर पर विवेचन किया गया है। पांच अंकों की इस नाट्य रचना में भारती ने पौराणिक पात्रों की मौलिक संकल्पना द्वारा युद्ध से उत्पन्न होने वाली मूल्यहीनता, अमानवीयता, विकृति, कुण्ठा और वैयक्तिक तथा सामूहिक विघटन का सजीव चित्रण किया है। नाटक के एक दृश्य में कितनी सजीवता के साथ धर्मवीर भारती ने इसका वर्णन किया है जब कथागायन में मृत वीरों के तर्पण के लिए कौरव-विधवाओं और पुरजन-परिजन को लेकर धृतराष्ट्र, युयुत्सु, संजय, गांधारी के युद्धभूमि की ओर प्रस्थान का उल्लेख है-

'वे छोड़ चले कौरव नगरी को निर्जन
वे छोड़ चले रत्न जड़ित सिंहासन
आगे रथ पर कौरव विधवाओं को ले
है चली जा चुकी कौरव सेना सारी
पीछे पैदल जाते हैं शीश झुकाये
धृतराष्ट्र, युयुत्सु, विदुर, संजय, गांधारी।'[6]

जानकीवल्लभ शास्त्री का 'पाषाणी' एक सुंदर और मनोविश्लेषणात्मक गीति नाट्य है। पौराणिक कथा के आधार पर शास्त्री जी ने इस अनूठे गीति नाट्य की रचना की है। रचना की एक-एक पंक्ति अपना महत्व रखती है। अहिल्या के मन की काम-कुण्ठा इसमें व्यक्त हुई है। इस तरह की कथा प्रसिद्ध है कि अहिल्या को महर्षि गौतम ने इन्द्र के साथ संभोग करने के कारण 'पाषाणी' बन जाने का शाप दिया था। इसी घटना को नाटककार ने मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है। इस गीति नाट्य पर फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद का स्पष्ट प्रभाव दिखलाई पड़ता है।

मध्यप्रदेश शासन के भाषा विभाग के वरिष्ठ अधिकारी दुष्यंत कुमार ने अधिक मात्र में लेखन नहीं किया है। परंतु जो कुछ भी लिखा है स्मरणीय है। उनका गीति नाट्य 'एक कंठ व़िापायी' अनुपम रचना है। हिन्दी के प्रखर विद्वानों और आलोचकों ने 'एक कंठ विषपायी' को 'अंधा युग' के बाद हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कृति निरूपित किया है और मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। इस गीति नाट्य में दक्ष यज्ञ का वह आख्यान है, जहाघ भगवान शिव का अपमान होता देख सती ने आत्मदाह किया था और शंकर के गणों ने यज्ञ का विध्वंस करके

उसका बदला लिया था। हर नयी पीढी, पुरानी पीढी की मान्यता और विचारों के प्रति विद्रोह करती है। पुराने मूल्यों को समाप्त होते देख पिछली पीढी नवीन मूल्यों पर प्रहार करने लगती है और धीरे-धीरे नये विचारों को अपना लेती है।

पुरानी मान्यताओं और विचारों की लाशें ढोने वाले लोग स्वयं या तो मर मिटते हैं या नये विचार अपनाकर, नई मान्यताओं का कालकूट विष पीकर विषपायी बन जाते हैं।

'संशय की एक रात' नाटककार नरेश मेहता द्वारा रचित एक बेहद महत्वपूर्ण गीति नाट्य है। इस रचना का कथानक रामकथा के इस अंश से संबंधित है जिसमें राम लंका युद्ध की तैयारी में सेतुबन्ध बनवा चुके थे। इसके कथानक में युद्ध की समस्या और उससे संबंधित प्रश्नों पर चिन्तन की प्रधानता है। कथोपकथन की दृष्टि से 'संशय की एक रात' उत्तम रचना है। इसमें गति और नाटकीयता दोनों है। मानसिक उद्वेलन के बीच सुन्दर कल्पनाओं के दर्षन होते हैं। प्रतीकात्मक दृष्टि से भी रचना उत्कृष्ट है। पात्र, घटनाएँ, सर्ग, शीर्षक सभी प्रतीकात्मक हैं। नाट्य में राम आधुनिकता के प्रतीक हैं जो युग सापेक्ष है।

'सुदर्शन वशिष्ठ द्वारा लिखित गीति नाट्य 'नदी और रेत'(सन्1990), वेदव्यास के व्यक्तित्व के बारे में नई दिघा खोलने का प्रयास है। नाटककार ने व्यास के जीवन के कुछ वैयक्तिक या आप्त क्षणों पर प्रकाश डालते हुए उन्हें मानवीय धरातल पर खड़ा कर दिया है।'[7] यह गीति नाट्य व्यक्ति की पीड़ा, उपेक्षा व उत्कंठा भाव को सम्यक रूप से परिभाषित करता है। व्यास, घृताची, अश्वत्थामा, अर्जुन सभी कहीं न कहीं आत्मपीड़ा से पीड़ित हैं। इन पात्रों के बहाने हम वर्तमान युग संदर्भ में अपनी स्थिति का अवलोकन कर सकते हैं। परंपरा और प्रयोग का वास्तविक अर्थ भी यही है कि वह मानव मूल्य की प्रतिष्ठा समकालीनता के संदर्भ में करे, जिसमें नाटककार सुदर्शन वशिष्ठ का यह नाटक कहीं न कहीं सफल दिखाई देता है।

प्रभात कुमार भट्टाचार्य का गीति नाट्य 'काठ महल' एक सशक्त नाटक है जो 'अंधा युग' की परंपरा में रखा जा सकता है। 'मिथक और आधुनिकता के संयोग से निर्मित इस नाटक में आम आदमी का मुक्ति के लिए भटकाव और संघर्ष कथा-बिन्दु के रूप में है जिसके इर्द-गिर्द यह काव्य नाटक रचा गया है।[8]

पांच अंकों में विभक्त इस नाटक में रचनाकार ने एक साहित्यिक-मिथक संदर्भ के माध्यम से सामन्तवाद से लेकर प्रजातंत्र तक की इतिहास यात्रा प्रस्तुत की है जिसमें पूंजीवाद, साम्यवाद, प्रगतिवाद, हेगेल, मार्क्स, नीत्से, गांधी और फ्रायड इत्यादि सभी को समेटने का प्रयास किया गया है परंतु प्रतीक के रूप में अभिशप्त यक्ष की कथा मेघ के माध्यम से अपना विस्तार पाता है।

डॉ. विनय का गीति नाट्य 'एक प्रश्न मृत्यु' महाभारत के बहुचर्चित कर्ण-कुन्ती आख्यान और त्रिकोण के तीसरे बिन्दु के रूप में जुड़े द्रौपदी-प्रसंग के बहाने मानवीय संबंधों एवं मूल्यों के कई आधुनिक भावात्मक तथा वैचारिक स्तरों को नाटकीय विडंबना के साथ पेश करता है। इसी दृष्टि से यह नाटक एक व्यापक मानवीय त्रासदी का रेखांकन भी करता है जो पौराणिक होने के साथ-साथ परंपरा एवं प्रयोग की दृष्टि से समकालीन भी है। नाट्य में कुन्ती के प्रति कहे गये इस संवाद में भाव व्यंजना चरम पर दिखाई देती है–

''जिन्हें देखने के लिए सूर्य की किरणों को
छिपकर जाना पड़ता है कक्ष में
पांच पांडवों की माता वह
इस खुले मार्ग की तपते मध्याह्न में
निश्चय ही कोई गंभीर आदेश है।''

हिन्दी में वैसे तो कई गीति नाट्यों की रचना की गई है जो संख्या में लगभग पचास-साठ के आस-पास होगी परंतु हमने हिन्दी साहित्य के कुछ चुने हुए गीति नाट्य का संक्षेप में विश्लेषण प्रस्तुत किया है। संक्षिप्तता में नीर-क्षीर विवेक के साथ विलक्षणता, शोध आलेख का एक गुण और सीमा दोनों होता है। इन बातों का संभवतः मैंने ध्यान रखने का प्रयास किया है।

निकर्षतः इस शोध आलेख में प्रमुखतः उन

काव्य नाटकों को स्थान देने का प्रयास किया गया है जो वर्तमान युग संदर्भ में गीति नाट्य के विविध रूपों से साम्य-वैषम्य रखते हुए अपनी अलग सत्ता एवं प्रतिष्ठा स्थापित करने में पूर्ण सफल है। प्रयोग एवं परंपरा की दृष्टि से इन गीति नाट्यों में लोक तत्व एवं गीति के समन्वित स्वरूप लोकप्रिय हुए हैं। इसमें बाह्य जीवन की क्रियाशीलता के साथ अंतरंग जीवन का चित्रण अत्यंत सफलता पूर्वक किया गया है।

संदर्भ सूची :

1. नागर शिवचंद्र : साहित्य के नये रूप : गीति नाट्य, 1972, पृ0 19
2. गौतम डॉ0 कला : हिन्दी गीति नाट्य, प्र0- हिन्दी अनुसंधान केन्द्र, मुरादाबाद, 2004. पृ0 28
3. डॉ0 नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्र0- मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, 1994. पृ0 470
4. चतुर्वेदी रामस्वरूप : हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, प्र0- लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1996. पृ0 150
5. गोविन्ददास सेठ : स्नेह या स्वर्ग, पृ0 2
6. भारती डॉ0 धर्मवीर : अंधायुग, प्र0- किताब महल, इलाहाबाद, 2013, पृ0 79
7. हेगड़े डॉ0 उमा : समकालीन हिन्दी नाटक युगबोध, प्र0- अमन प्रकाशन, कानपुर, 2016. पृ0 156
8. सं0- डॉ0 नरेन्द्र मोहन : समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच, प्र0- वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014. पृ0 200.

तंत्रवाद्य सितार

डॉ0 गुलश्षन ग्रोवर

यह समस्त ब्रह्माण्ड विधाता की विचार शक्ति का ही दृश्य रूप है। जिस प्रकार प्राणी मात्र के शरीर में आत्मा ही सर्वश्रेष्ठ है उसी प्रकार संगीत में नाद ही सर्व प्रधान है। इसलिए संगीत का निकट और घनिष्ठ संबन्ध ध्वनि शब्द से है जो नाद का ही रूप है। जो व्योम-शून्य व प्रकाश तत्व का एक मात्र प्रमुख गुण है - ''शब्दम् गुणम् आकाशम्'' सम्पूर्ण संगीत नाद और लय पर आश्रित है। नाद के दो भेद है-आहत नाद और अनाहत नाद। आहत नाद को हम संगीत के, व्यवहारिक रूप में लाते है। आहत नाद अपने पाँच ध्वनि रूपों में, जिन्हे संगीतत्मक ध्वनियाँ कहते है, ये ध्वनियाँ नखज, वायुज, चर्मज, लोह तथा शरीरज होती है। वाद्य वर्गीकरण के विषय में सर्व प्रथम भरत मुनि ने नाट्य शास्त्र में चार वर्ग माने है।

''तंत चैवावनद्ध च धनं सुविर मेव च।
चर्तुविधं तु विज्ञेयमातोद्य लक्षणन्वितम्।।''

वाद्यो के आधार पर महर्षि भरत ने चार वर्ग विभाजित किये है। - 1. तत अर्थात तन्त्रीयुक्त वाद्य, 2. सुषिर अर्थात् वशांदि वाद्य 3. अवनद्ध अर्थात् चर्मावद्ध वाद्य 4. घन अर्थात् तालादि वाद्य। वादन की क्रिया के आधार पर इन वाद्यो का अपना एक अलग महत्व है। जो कि प्राचीन, सर्वश्रेष्ठ एवं वैज्ञानिकता से परिपूर्ण है। जिसमें से तन्त्र्वाद्य सितार अपनी एक अलग पहचान रखता है।

एवं वैज्ञानिकता से परिपूर्ण है। जिसमें से तन्त्र्वाद्य सितार अपनी एक अलग पहचान रखता है। जिसका पूर्ण अध्ययन करने से आत्मिक शान्ति का अहसास होता है। तन्त्र्वाद्य सितार वर्तमान में देश नहीं विदेशों में भी अपनी एक अलग पहचान बना चुका है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से सितार के सम्बन्ध में अध्ययन करें तो गुप्तकाल तक अनेक वीणाओं का अच्छा उल्लेख मिलता है। समय-समय पर वीणाओं में परिवर्तन भी है। लगभग 60 वीणाओं के नाम का उल्लेख मिलता है। तीन तारों वाली तंत्री वीणा और सौ तारों वाली शततन्त्री वीणाओं का भी उल्लेख मिलता है।

डॉ0 पण्डित लाल मणी ने अपनी क ति ''तंत्री नाद'' में सितार का उल्लेख किया है-ग्यारहवीं शताब्दी के बाद भारत में बसे मुसलमानों ने इस देश को अपना वतन मानना प्रारम्भ कर दिया था। परन्तु अन्य विदेशियों में अंग्रेजी, फ्रांसीसी तथा पुर्तगालों ने यहाँ अपनी भाषा, संस्क ति-सम्यता और धर्म का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। कुछ विदेशियों ने भारतीय संगीत पर कलम चलाई। सन् 1835 के लगभग उत्तर प्रदेश का बान्दा स्टेट संगीत का एक बड़ा केन्द्र था। इस दरबार में उस युग के श्रेष्ठ गायक वादक रहते थे। इसी दरबार में अंग्रेजी ने अपने अधिकारी के रूप में 'कैप्टन विलर्ड' को रखा था। 'कैप्टन विलर्ड' भारतीय संगीत में रूचि रखते थे अस्तु उन्होनें इस अवसर का लाभ उठाकर डनेपब वि भ्पदकनेजंदष नामक पुस्तक लिखी, जो 1838 में तैयार हुई। इस पुस्तक में उस समय के भारतीय संगीत का अच्छा वर्णन मिलता है जिसमें स्वभातः लेखक ने वर्तमान के साथ-साथ कुछ

प्रवक्ता (शिक्षा विभाग) सेन्ट जोन्स कॉलेज, आगरा

ऐतिहासिक बातें भी कही है। इसी पुस्तक में लिखा है कि कुछ लोगों का कहना है कि 'सितार' की रचना अमीर खुसरों ने की थी। बस फिर क्या था सभी 'कैप्टन विलर्ड' की बात कहने लगे और आज तक कहते आते है।

आधुनिक युग में सर्वाधिक प्रसिद्ध तत वाद्य सितार का अविष्कार मध्य युग में विकसित हुआ तीन तार का होने कारण इसे सहतार नाम दिया गया जो कि एक फारसी नाम था। धीरे-धीरे इसमें तारों की संख्या सात हो गयी जिससे इसे सहतार न कहकर सितार कहा जाने लगा। कुछ विद्धानों के अनुसार सितार वाद्य का जन्मदाता सम्राट समुद्रगुप्त को कहा जाता था। लेकिन कैलाश चन्द्र देव बृहस्पति का मत था, कि यह महाभारत काल से पहले का है। कुछ विद्धान इसको अमीर खुसरों की इजाद मानते है। लेकिन आचार्य बृहस्पति का विचार है कि है कि खुसरों के किसी भी ग्रन्थ में सितार शब्द का कोई प्रयोग तक नहीं है। इरानी संगीत में इसका नाम खुसरों के आने से पूर्व से ही चला आ रहा है। अतः अमीर खुसरों को सितार का अविष्कारक मानना उचित नही जान पड़ता है।

सितार की उत्पत्ति एवं विकास

अनेक विद्वनों का यह अनुमान रहा है कि सितार ईरानी अथवा पर्सियन वाद्य है, जो मुसलमानों के आगमन के साथ यहाँ आया।

यह वाद्य प्राचीन त्रितन्त्री का विकसित स्वरूप था। अकबरी दरबार में इसको प्रतिष्ठत स्थान प्राप्त नहीं था। इस सम्बन्ध में एक बात ध्यान देने योग्य है कि सितार का उल्लेख तुर्की तथा प्राचीन ईरानी साहित्य के अलावा भारत से उपलब्ध पर्सियन साहित्य में पाया जाता है।

सितार की मुख्य विशेषता उसके पर्दे में है, जिनको वांछित स्वरावली में बाँधा जा सकता है। अमीर खुसरों से बहुत पहले भारत में पर्दे वाला वीणा प्रचलित थी, उनके प्रायः समकालीन शांरगदेव के ग्रन्थों में ऐसी वीणाओं का प्रचार प्रमाणित होता है सम्भवतः तत्कालीन त्रितन्त्री वीणा में ही यथोचित्त परिवर्तन कर सितार का प्रचलन अमीर खुसरों ने किया, हो तो आश्यर्च नहीं अतएव सितार का अविष्कारकर्ता मानने के स्थान पर उसका प्रचारकर्ता उन्हें मानना अधिक श्रेयस्कर होगा।

सितार के अंगों का वर्णन

1. तूम्बाः लौकी का गोलाकार भाग तूम्बा कहलाता है। तूम्बा के दो प्रकार होते है - 1. गोलाकार 2. चपटा अण्डाकार

2. तबलीः तूम्बा के ढकने के लिए लकड़ी का एक पतला ढक्कन होता है। जिसके ऊपर घुड़च रखी जाती है।

3. घुड़चः तबली के ऊपर हड्डी या लकड़ी की एक 'चौकी' सी रखी जाती है। जिसके ऊपरी धरातल से ही सितार के 'तार' जाते है। इसे घुड़च कहते है।

4. कील व लँगोटः तूम्बा की पेंदी में सितार के तारों के फसाने के लिए लकड़ी या हड्डी की एक तिकानी पट्टी फिट रहती है। उसमें तार फाँसने का प्रबन्ध रहता है इसी में सितार के सभी तार फंसाये जाते है। इसे लंगोट या कील कहते है।

5. डाँडः लकड़ी का एक खोखला लम्बा सा भाग होता है जो एक पतली लकड़ी की पट्टी से ढका रहता है और तूम्बा से जुड़ा रहता है इस डांड में खूटियों के उचित स्थान पर छिद्र रहते है। इसे डाँड कहते है।

6. गुलू अथवा गुलः तूम्बा और डाँड का जुड़ा हुआ स्थान जो गर्दन के समान प्रतीत होता है। उसे गुल कहते है।

7. तार गहनः खूँटियों के पास हड्डी या हाथी-दाँत की दो पट्टियाँ होती है। इनमें से जिसमें तार पिरोये जाते है तथा जिसमें तारों को पिरोने के लिए छिद्र होते है, उसे तारगहन कहते है।

8. अटीः तारगहन के बाद दूसरी पट्टी जिस पर तार रखे जाते है, वह अटी कहलाती है।

9. मनका या गुरियाः सितार के पहले तार में लँगोट (जहाँ तार बाँधे जाते है) और घुरच के बीच में जो मोती पड़ी रहती है तथा जिसमें तार को स्वर से मिलाने में सहायता मिलती है, उसे मनका या गुरिया कहते है।

10. खूटियाँः सितार में लकड़ी की बनी सात खूँटियाँ होती है जिनसे तार कसे अथवा ढीले किये जाते है। तरब के सितार में 12 खूँटियाँ और होती है।

11. सारिका सुन्दरी अथवा परदेः प्राचीनकाल में जिनहे 'सारिका' कहते थे, मध्य काम में कलाकार उन्हे 'सुन्दरियाँ' कहने लगे, उन्ही को आजकल परदे कहा जाता है। इनकी संख्या 16 से 19 तक होती है। डाँड के ऊपर पर्दे ताँत या धागे से बँध ें रहते है, यह प्राय पीतल अथवा लोहे के होते है।

12. सितार के तारः (क). सितार के मुख्य सात तार होते है। (ख). तरव के तारः तरवों की व्यवस्था के कारण सादे सितार की अपेक्षा तरवदार सितार कुछ बड़ा होता है। उसमें ग्यारह तरवे होती है। प्राचीन पद्धति के अनुसार तरव निम्न स्वरों में मिलाते थे-ध नी स रे ग म प ध नी सं रें इन स्वरों में राग के अनुसार परिवर्तन कर लिया जाता था। तरव का प्रथम स्वर मन्द्र धैवत अथवा मन्द्र पंचम में मिलाया जाता था। तरवें स्वतः झंकृत होती थी, उन्हें छेड़ा नहीं जाता था। नवीन पद्धति में तरफें यदा-कदा छेड़ी भी जाती है। इसलिए तरव का प्रथम स्वर मध्य सप्तक 'स' होता है और शेष स्वरों को राग के अनुसार मन्द्र निषाद अथवा मन्द्र धैवत मिलाना प्रारम्भ करते है।

13. सजावट का कामः सितार का ढाँचा तैयार हो जाने पर उसकी सजावट के लिए सेलोलाइट, हड्डी अथवा हाथीदांत पर भिन्न-भिन्न प्रकार के फूल-पत्तियों की बेलें बनाकर सितार की लकड़ी में चिपका देते है।

14. मिजराव का महत्व 'अमरकोश' में जिसे 'त्रिकोण' कहा है तथा मध्य युग में जिसे नक्की या नखी कहते थे, उसी को वर्तमान में मिजराव कहा जाता है। यह पीतल अथवा इस्पात के मोटे और कड़े तार का बनाया जाता है। मिजराव से तार को छेड़ने से जो नाद उत्पन्न होती है, उसे मिजराब का बोल कहते है। आगे से पीछे की ओर मिजराव लगाने से 'दा' की ध्वनि होती है और पीछे से आगे की ओर लगाने से 'रा' की ध्वनि उत्पन्न होती है। इस प्रकार 'दारा' मिजराव का एक बोल हुआ और इसी प्रकार मिजराव से अनेकानेक ध्वनियाँ निकलती है। सरगम बजाते समय पहले 'दा' बजाकर 'सा' निकलना चाहिए। इसी भान्ति पूरी सरगम आरोही और अवरोही निकलनी चाहिए। जितने समय से मिजराव का बोल 'दा' या 'रा' बोलता है, उतने ही समय में 'दा' 'रा' दोनों शब्दों को मिलकर बजाने से 'दिर' होता है।

सितार के तार व उनको मिलाना

सितार में सात स्वर होते है,

1. सितार का पहला तार फौलादी लोहे का बना होता है। इसे ''बाज का तार'' भी कहते है तथा मन्द्र सप्तक के मध्यम स्वर से इसे मिलाया जाता है। सितार-वादन में सबसे अधिक प्रयोग इसी तार का होता है, क्योंकि मन्द्र सप्तक के मध यम स्वर से तार सप्तक तक के स्वरों को इसी तार द्वारा निकालते हैं।

2. सितार का दूसरा तार पीतल का बना होता है और ''जोड़ी का तार'' कहलाता है। इसे मन्द्र सप्तक के ाड्ज स्वर से मिलाते है।

3. दूसरे तार की तरह सितार का तीसरा तार भी पीतल का बना होता है। इसे भी ''जोड़ी का तार'' कहते हैं तथा मन्द्र सप्तक के ाड्ज स्वर में मिलाते है।

क्योंकि ये तार मन्द्र सप्तक के ाड्ज से मिलाये जाते है, इसलिए इन्हें जोड़ी के तार कहकर पुकाते है। सितार मिलाने के लिए सबसे पहले इन दो तारों को मिलाया जाता है, फिर बाद में अन्य तार मिलाये जाते है।

4. सितार का चौथा तार लोहे का बना होता है जो ''पंचम का तार'' कहलाता है। इसे मन्द्र सप्तक के पंचम स्वर से मिलाया जाता है।

5. सितार का पाँचवाँ तार पीतल का बना होता है। परन्तु अन्य तारों से यह कुछ मोटा होता है। इसे अति मन्द्र सप्तक के पंचम् स्वर से मिलाया जाता है। इसको भी ''पंचम का तार'' अथवा ''लर्ज का तार'' कहते है।

6. सितार का छठा तार पतले फौलादी लोहे का बना होता है तथा चिकारी का तार अथवा

''पपैया का तार'' कहलाता है। इसे मध्य सप्तक के ाड्ज से मिलाया जाता है।

7. सितार का सातवाँ तार भी पतले फौलादी लोहे का बना होता है। इसको भी चिकारी का तार अथवा पपैया का तार कहकर पुकारते है। इस तार को तार सप्तक के ाड्ज स्वर से मिलाया जाता है। कुछ लोग इसे मध्य सप्तक के पंचम से भी मिलाते है, परन्तु तार सप्तक के ाड्ज से मिलाने का अधिक प्रचार है।

सितार के घराने

सितार वाद्य के दो प्रमुख घराने है -

1. सैनी घराना, और
2. अमीर खुसरों घराना।

1. सैनी घराना - सैनी घराना संगीत सम्राट् तानसेन का घराना है। तानसेन के द्वितीय पुत्र सूरतसेन के वंशज अमृतसेन एक श्रेष्ठ सितारियें थे। इन्होने सितार के स्वरूप में संशोधन किया और उसका प्रचार किया। सितार में गूँज उत्पन्न करने हेतु सितार में सात तारों के स्थान पर 11 अथवा 12 तार और लगा दिये गये जिन्हें तरब का तार कहते है। इसी को तरबदार सितार भी कहते है। अमृतसेन के पौत्र निहालसेन के सितार के स्तर को और ऊँचा उठाया। इसी वंश के अमीर खाँ सुप्रसिद्ध तन्त्रकार हुए हैं, जिन्होंने सितार में अमीरखानी बाज चलाया। इनके शिष्य इमदाद खाँ हुए। इमदाद खाँ के पुत्र स्व0 इंनायत खाँ थे जो इस युग के अद्वितीय सितारियें थे इन्हीं के पुत्र उस्ताद विलायत खाँ हैं जो आधुनिक काल के बेजोड़ कलाकार है।

2. अमीर खुसरों के वंशजो का घराना (मसीतखानी घराने) - जहाँ एक ओर सैनी घराने के कलाकारों ने सितार वादन की कला को बढ़या, वहाँ दूसरी ओर अमीर खुसरों के वंशज एवं शिष्य भी सितार वादन उस्ताद फिरोज खाँ हुए है। फिरोज खाँ के पुत्र मसीत खाँ एक उच्च कोटि के सितारवादक थे। इन दोनों पिता-पुत्रों में विलक्षण प्रतिभा थी। इनके नाम से फिरोजखानी अर्थात् मसीतखानी बाज भी चल पड़ी जो कि आज तक प्रचलित है।

इसके अलावा बरकत उल्ला खाँ भी उच्चकोटि के सितारवादक थे। सितारवादकों का एक वर्ग लखनऊ में भी बस गया। लखनऊ के ही सुप्रसिद्ध सितारवादक रजा खाँ ने छोटा ख्याल, कव्वाली एवं ठुमरी गायन शैली से प्रभावित होकर द्रुतलय की गतों का निर्माण किया जो आधुनिक युग में रजाखानी गत के नाम से प्रसिद्ध है।

मुख्य सितार वादक

सितार के वर्तमान प्रसिद्ध वादक उस्ताद विलायत खाँ के दादा ने सुरबहार की शैली पर सितार वादन की नई शैली का अविष्कार किया, इन्होने पर्दो की संख्या 23 के स्थान पर 19 कर दी तथा सितार में सर्वप्रथम तरबे तोड़ दी। सितार वादन में मींड, तथा झाला वादन आरम्भ करने का श्रेय इन्हीं को दिया जाता है। इसी शैली को इमदादखानी बाज कहते है, इसमें दहिने अथवा बाएँ दोनों हाथों का समान उपयोग किया जाता है।

अब्दुल हलीम जाफर का नाम भारत के प्रतिष्ठित सितार वादकों में बड़े ही सम्मान से लिया जाता है। आपके वादन में कण, खटका, मुर्की का प्रयोग बहुत ही सुन्दर होता है। आशिक अली खाँ न केवल एक अच्छे सितार वादक थे बल्कि एक अच्छे गायक भी थे। सितार के विकास और प्रचार में स्व0 उस्ताद इनायत खाँ का स्थान अद्वितीय है। सितार वादन उनके वंश में परम्परा से चली आ रही है। उनके पिता स्व0 इमदाद खाँ एक अच्छे सितारे वादक थे औरपुत्र विलायत खाँ आधुनिक समय के श्रेष्ठ वादकों में गिने जाते है। इनायत खाँ, पुरानी परम्परा के होते हुये भी रंजकता वृद्धि के लिये प्रयोगवादी दृष्टिकोण अपनाते रहे। बजाते-बजाते विवादी स्वरों का प्रयोग इतनी सुन्दरता से कर जाते थे। इमदाद खाँ लगभग 21 वर्ष की अवस्था से ही वीणा और रबाब बजाने लगे। इन्होने सितार वादन की कई नई विधियों का अन्वेषण किया। ये एक ही पर्दे पर सातों स्वरों को निकालने पर प्रबलता देने लगे। इमदाद खाँ के दो पुत्र हुये इनायत खाँ और वाहिद खाँ। निखिल बनर्जी आद

ुनिक सितार-वादकों में श्री निखिल बनर्जी का नाम अग्रणी रहा है। बाल्यावस्था से ही यह आशा की जाती थी कि आपकी गणना चोटी के कलाकार में होगी। विलम्बित लय में आलाप-जोड़, तान-तोडें, तैयारी आदि में अद्वितीय थे।

आपके वादन में कहीं-कहीं सरोद की छाया दिखाई पड़ती थी, जो स्वाभाविक है,, क्योंकि आप अलाउद्दीन खाँ और उनके पुत्र अली अकबर खाँ के शिष्य थे। वादन के क्षेत्र मे मजीत खाँ, रहीमसेन और अमृतसेन को त्रिमूर्ति माना जाता है, इन्होने सितार वाद्य को स्वतन्त्र वाद्य के रूप में स्थान दिलाया है। गत तोड़े के साथ जोड़काम मींड इत्यादि प्रकार वाले सितार का आरम्भ करने तथा लोकप्रिय करने का श्रेय इन्ही को है।

उस्ताद विलायत खाँ के वादन में सम्पूर्ण गायकी अंग का समावेश पाया जाता है। विदेशों में भारतीय संस्कृति का प्रचार करने के लिए जो स्थान महात्मा बुद्ध, स्वामी विवेकान्नद, रामतीर्थ आदि महापुरूषों को प्राप्त है, वही स्थान पंडित रविशंकर को विदेशों में भारतीय शास्त्रीय संगीत का प्रचार करने के लिये प्राप्त होता है। जिन्होने सितार में अतिमन्द्र स्वर की तन्त्री को बढ़ाया है और आपने इसे अद्‌भुत बना दिया है। पण्डित रविशंकर जी की पुत्री अनुष्का शंकर भी एक विश्व प्रसिद्ध सितार वादिका है और अपने पिता के बाद इस परम्परा को कायम की हुई है। अन्य वादकों में पण्डित निखिल घोष, विलायत खाँ, इलियाज खाँ, यूसूफ अली, बाबू खाँ, पन्ना लाल गुसाई इत्यादि।

सितार वादन की प्रमुख शैलियाँ

क. मसीतखानी गतः मियाँ तानसेन के वंशज उस्ताद मसीत खाँ उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक जीवित थे। इन्होनें सितार वादन की एक अपनी शैली चलाई जिसे मसीत खानी गत एवं फिरोजखानी गत भी कहते है। इस शैली को दिल्ली बाज भी कहते है। विलम्बित गत मे होने के वजह से इसमें बजने वाले तोड़े-चौगुन, छैगुन एवं अठगुन लयकारियों के होते है। इस शैली की गत में निश्चित मिजराव से बोलों का प्रयोग होता है-दिर दा दिर दा रा दा रा

ख. रज़ाखानीगत 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में लखनऊ के गुलाम रजा नामक अच्छे सितार वादक थे। उन्होनें बन्दिश की ठुमरी तथा तराना के आधार पर मध्य लय तथा द्रुत लय की गतें निर्मित की जो बड़ी आकर्षक थी। इस शैली के मिजराब के मुख्य बोल हैं - दो रादा ेरा दो

सितार की परिभाषिक शब्दावली

1. कृंतनः तूत वाद्यों पर एक ही आघात से एक से अधिक स्वर निकालने को 'कृन्तन' कहते है। यह क्रिया मींड रहित होती है। यह सदैव ऊँचे स्वर से नीचे स्वर तक आते समय की जाती है। वीणा परिवार के सभी वाद्य यन्त्रों पर कृन्तन उपयुक्त होता है। वॉयलिन पर इसको एक ही गज से निकाला जाता है।

2. मीड़ः किसी निश्चित स्वर से दूसरे स्वर तक घर्षण द्वारा जाना मींड कहलाता है। मींड में एक स्वर से दूसरे स्वर तक जाने के लिए नीचे के स्वरों को केवल स्पर्श मात्र करते है तथा बीच के स्वरों को खींचते हुए निश्चित स्वर पर आ जाते है। मींड में रंजकता तथा कोमलता अधिक आ जाती है। यह भी प्राचीन गमक का एक प्रकार है। मींड को निकालने के लिए दो स्वरों के ऊपर उल्टा चाँद बनाते है जैसे - प ग या सां प प से ग कहने में म का स्पष्ट उच्चारण नही होगा, परन्तु प ग तक अवाज खींचने में स्वर का स्पर्श हो जायेगा।

3. कंपनः स्वरों को हिलाने को कम्पन कहते हैं। कम्पन गमक का एक प्रकार है जिसे कम्पित गमक भी कहते है। गमक में किसी विशेष स्वर को हिलाते है।

4. घसीट अथवा सूतः सूत प्रायः बिना परदे के वाद्यों पर बजायी जाती है तथा सितार पर इसे घसीट के नाम से पुकारते हैं। एक परदे से आरम्भ करते हुए किसी दूरस्थ परदे तक मिजराव के एक ही प्रकार में घसीटते हुए जाने की क्रिया घसीट अथवा सूत कहलाती है।

5. जमज़माः सितार के दो स्वरों को शीघ्रता से एक के बाद एक-एक करके बजाने को जमजमा

कहते है। यह काम दो उँगलियों की सहायता से होता है। पहली उँगली परदे पर रहती है तथा दूसरी काम करती है, जिससे जमजमा उत्पन्न होता है।

6. खटका तथा मुर्कीः खटका तथा मुर्की गमक के ही प्रकार है, जिन्हें हिन्दुस्तानीं संगीत-पद्धति में स्वतन्त्र नाम दे दिये है। खटका और मुर्की स्फुरित गमक (प्राचीन गमक का एक प्रकार) के अन्तर्गत आते है। गायन तथा वादन में जब दो स्वरों को झटके के साथ गाते अथवा बजाते है। उदाहरण के लिए-सा (सा) - सा सा रे नी सा अथवा सा रे नी सा।

7. झालाः (क). सीधा झालाः जिस झाले का प्रारम्भ सीधी मिजराव से होता है। उसे सीधा झाला कहते है। जैसे - दा रा रा दा अथवा दा रा रा दा रा रा दारा इत्यादि।

(ख). उल्टा झालाः जिस झाले का प्रारम्भ उल्टी मिजराव से होता है उसे उल्टा झाला कहते है। जैसे - रा दा रा दा रा रा, रा दा रा रा इत्यादि।

8. तोड़ाः वाद्य में किसी राग की गत बजाकर उस गत के किसी भाग में द्रुतलय में राग की शुद्धता रखते हुये तालवद्ध अलंकृत करने को तोड़ा या पल्टा कहते है।

भारतीय उपशास्त्रीय संगीत की लोकप्रिय गायन शैली - ठुमरी में सौंदर्य तत्व

अमृता दत्ता

गीत, वाद्य एवं नृत्य - इन तीनों के समन्वित रूप को संगीत कहा जाता है।

वेद-उपनिषद-पुराणों में भी संगीत का वर्णन मिलता है। भारत में सगीत की दो मुख्य पद्धतियाँ हैं। पहली है उत्तर भारतीय संगीत पद्धति एवं द्वितीय है कर्णाटक संगीत

पद्धति। उत्तर भारतीय संगीत की दो मुख्य गायन विधा हैं - भारतीय शास्त्रीय संगीत एवं उपशास्त्रीय संगीत। हमारी अभिजात संगीत अर्थात् शास्त्रीय संगीत एवं उपशास्त्रीय संगीत का मूल अथवा आधार लोकसंगीत को ही माना जाता है।

उत्तर भारतीय उपशास्त्रीय संगीत की गायन शैलियों में ठुमरी गायन शैली अत्यन्त लोकप्रिय है। उपशास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में ठुमरी गायन ैली का अपना एक विशिष्ट स्थान तथा अलग एक पहचान है। ठुमरी गायन-शैली के लोकप्रियता के विषय में पुस्तक में इस प्रकार लिखा गया है -

''उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों में तो ठुमरी का आकर्षण इतना बढ़ गया था कि 'गुलाम रजा' सितार पर भी ठुमरियाँ बजाने लगे थे।''1

''ठुमरी गायक की आत्मा की अभिव्यक्ति और पूर्णतया श्रृंगार और भक्तिरस से परिपूर्ण है।''

"A beautiful melody style of semi classical music at once highly romantic and emotionally appealing."

"An expression of singers soul and temperament, Thumri is purely romantic or devotional."

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों, संगीत प्रेमियों द्वारा ठुमरी की परिभाषा दी गई है। ठुमरी का अर्थ है 'ठुमका' अथवा 'ठुमकना' इत्यादि परिकल्पना के अनुसार साहित्यिक गेय पदों को जिसमें श्रृंगार वात्सल्य, विरह इत्यादि रसों का सन्निवेश होता है, ठुमरी की संज्ञा दी गई है। ठुमरी गायन की उत्पत्ति का मूल स्थान जो भी रहा हो परन्तु प्राचीन सरस कवियों की भक्तिमय रचना, पदों का भावपूर्ण गायन, नर्तन, प्रदर्शन इसका मूल आधार रहा है।''[2]

विभिन्न तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मध्यकाल में भारतीय संगीत ने अपने श्रृंगारात्मक अनुभूति एवं अभिव्यक्ति के लिए विशेष स्थान प्राप्त किया है। इसी समय विभिन्न गायन शैली जैसे ध्रुपद, धमार, ख़्याल, ठुमरी, दादरा, होरी, सादरा, चतुरंग, त्रिवट आदि विभिन्न गायन-शैलियों का विकास हुआ। इनमें ठुमरी गायकी श्रृंगार रस प्रधान होने के कारण तथा अपने कुछ विशेषताओं के कारण संगीत रसिकों को बहुत ही आकर्षक लगी। ''श्री मदनलाल व्यास'' ने ठुमरी के संबंध में कहा है - 'ठु', 'म' एवं 'री' ठुमरी शब्द के अंश है। 'ठुम' ठुमकने अथवा 'ठुमक' कर या शान से चलने का द्योतक है, जबकि 'री' अंतरंग सखी से अपने अंतर की बात कहने का। आचार्य कैलाशचन्द्रदेव, बृहस्पति के अनुसार, ठुमरी का विषय नायिका के अंतर-आत्मा की असंख्य भाव-लहरियों का चित्रण है, इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए कैशिकी, वृत्ति का आश्रय लेकर जब स्वर, ताल और मार्ग का प्रयोग किया जाता है, तब 'ठुमरी'

पीएच.डी. शोधार्थी, संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

नामक गीत की सृष्टि होती है। जब वादन के द्वारा यह गीत उपरंजित होता है और अभिनय के द्वारा इसे पूर्ण किया जाता है तब ये भावनाएँ मूर्त हो उठती है।''[3]

ठुमरी एक भाव-प्रधान गायन शैली है। भावों की सूक्ष्म अभिव्यक्तियों को नृत्य एवं गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त करना ही ठुमरी की मुख्य विशेषता है। गायक ठुमरी गायकी के रूप को सजाने और संवारने अर्थात् सुंदर बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के अलंकरण जैसे मुर्की, खटका, कण, जमजमा, मींड़ आदि का मुख्य रूप से प्रयोग करते है।

ठुमुरी गायन शैली की उत्पत्ति

ठुमरी गायन शैली की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न लेखकों की धारणा भिन्न-भिन्न हैं। अर्थात् ठुमरी गायकी का जन्म कब, कैसे एवं किसके द्वारा हुआ इस विषय पर अलग-अलग मान्यताएँ प्राप्त होती है। तथापि सर्वसम्मति से चार प्रधान मान्यताएँ कुछ इस प्रकार है -

1. पहली मान्यता है कि राजा मानसिंह तोमर (1486-1516 ई.) ने देवयोग से इसका आविष्कार किया। वह ध्रुपदिये थे। कहा जाता है कि वह एक दिन भैरवी गा रहे थे। अनायास ही उनसे एक विवादी स्वर लग गया जिसका प्रभाव बड़ा मनोहर लगा। उस कारण उन्होंने भैरवी में कुछ और विवादी स्वरों का प्रयोग किया और देखा कि उन स्वरों से उनकी सुंदरता ऐसी बढ़ गयी जिसका कि उन्होंने पहले कभी अनुभव नहीं किया था।[4] राग भैरवी के स्वरों में ऐसे नए प्रयोगों के कारण जो स्वरूप उभरकर सामने आया, उन्होंने अपने नाम पर उसका नाम 'तोमरी' रखा। कहा जाता है 'तोमरी' शब्द ही धीरे-धीरे समय के साथ बदलते-बदलते 'ठुमरी' में परिवर्तन हो गया।

2. दूसरी मान्यता यह है कि ठुमरी का उद्‌भव उन भजनों और कीर्तनों से हुआ जिन्हें कि पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में वैष्णव मत के अनुयायी गाया करते थे।

3. तीसरी मान्यता के अनुसार ठुमरी का उद्‌भव उन लोकगीतों से हुआ जो कि नृत्य के साथ-साथ गाये जाते थे। यह कहा जाता है कि 'ठुमरी' ठुमक शब्द से निकलता है। जिसका अर्थ सुंदर पदक्षेप होता है।

4. चौथी मान्यता के अनुसार ठुमरी का उद्‌भव छोटे ख्याल से संबंधित है। इसका जन्म लगभग 19वीं शताब्दी के आरंभ में हुआ और इसके जन्मदाता गुलाम नबी शोरी थे जो शोरी मियाँ के नाम से विख्यात थे।[5]

ठुमरी गायन की उत्पत्ति के विषय में पीएच. डी. शोधार्थी गीताजंली सिंह जी का कहना है कि - ''ठुमरी के विषय में दो मत है, एक तो यह कि इसका जन्म काशी के कथकों द्वारा हुआ और दूसरा यह कि वाजिद अली शाह के दरबार में यह उत्पन्न हुई। इतना निर्विवाद है कि वाजिद अली शाह के पूर्व ठुमरी का नाम कहीं नहीं मिलता। कृष्णानन्द रामसागर ने अपनी 'रागकल्पद्रुम' वाजिद अली शाह के सिंहासन रोहण से ठीक पहले प्रकाशित किया। उसमें जहाँ हजारों ध्रुवपद, कई ख्याल एवं टप्पे, सैकड़ों रंगीन गान दिए गए है, वहाँ हजारों पृष्ठ के कई भागों वाले समूचे में केवल एक ठुमरी संग्रहित है। इसमें दो बातें निर्विवाद हो जाती है। एक तो यह कि ठुमरी का अस्तित्व वाजिद अली शाह के पूर्व से था। दूसरा यह कि उसका प्रचार न्यनूतम था। तभी तो लोकगीतों और रंगीन गानों की हजारों संख्या में कृष्णानंद जी एक ही ठुमरी पा सके।

अतएव यह संभावना होती है कि ठुमरी कहीं अन्यत्र की चीज़ है जिसने वाजिद अली शाह के दरबार में आश्रय पाया। 'अन्यत्र' बनारस ही सम्भावित होता है, क्योंकि एक तो यह संगीत का बड़ा भारी केन्द्र था, दूसरा ठुमरी की गायकी में बोल को सुंदर बनाने का काम जितना काशी में होता रहा है, उतना लखनऊ में नहीं हुआ।[6]

ठुमरी की वर्तर्ममान शैलियाँ

ठुमरी गायन में मुख्य है बोल। अतः बोलों पर आधारित होने के कारण ठुमरी को बोल-प्रधान गायकी भी कहा जा सकता है। बोलों के भाव, गायन का अन्दाज़, उनमें प्रयुक्त लय-ताल इत्यादि बातों को ध्यान में रखते हुए ठुमरी की दो मुख्य

शैलियाँ मानी गई हैं - जो है 1. बोल-बाँट की ठुमरी और 2. बोल-बनाव की ठुमरी, अब इन दोनों पर चर्चा करने का प्रयत्न कर रही हूँ।

1. बोल-बाँट की ठुमरी - बोल-बाँट की ठुमरी को 'बंदिश की ठुमरी' अथवा 'लय-बाँट की ठुमरी' भी कहा जाता है। प्रारंभ में ठुमरी नृत्य के साथ विशेषकर कथक नृत्य के साथ गाई जाती थी। लखनऊ की ठुमरियाँ वास्तव में बोल-बाँट की ठुमरियाँ होती हैं। लखनऊ के नृत्य सम्राट बिन्दादीन महाराज और कालिकादीन महाराज इस प्रकार की ठुमरी की रचना में पारदर्शी थें। उन्होंने अनेक ठुमरियों की रचना की हैं। इस प्रकार की ठुमरियों की बंदिश बहुत ही सुगठित होती हैं।

लय की दृष्टि से गति प्रधान होने के कारण बोल-बाँट की ठुमरियों को मध्य अथवा द्रुत लय में गाया जाता है। इस प्रकार की ठुमरियों में प्रयुक्त भाषा ब्रज भाषा है। इस प्रकार की ठुमरियों के साहित्य में विशेष रूप से राधा-कृष्ण प्रेमलीला, ब्रज का सुंदर चित्रण, श्रृंगार के संयोग तथा वियोग भाव को सौन्दर्यता के साथ व्यक्त किया जाता है। बोल-बाँट की ठुमरियों की ख़ास बात है - विभिन्न लयकारियों के साथ स्वर-बद्ध होकर बोल-विस्तार करना, गीतों के बोलों को छोटी-छोटी तिहाइयों के साथ गाना, इसके अतिरिक्त इस प्रकार की ठुमरियों में सरगम, तान एवं बोलतानों के प्रयागों से भी सौन्दर्य-वृद्धि किया जाता है कुछ बंदिशी ठुमरी के उदाहरण हैं -

1. गायक ज़मीरुद्दीन द्वारा गाई राग काफी पर आधारित ठुमरी है - दादुरवा बोले मोरा, शोर करत कोयल। ताल - द्रुत तीनताल।

2. गायक महबूब जान द्वारा गाई बिहाग की ठुमरी है - देखो सखी, कन्हैया रोके ठाढ़ो है डगर, पनिया भरन कैसे जाऊँ मोरी अली। ताल - तीनताल (गायक मध्य लय एवं द्रुतलय किसी भी लय में यह ठुमरी गा सकते है)

3. ललन पिया द्वारा गाई राग काफी पर आधारित एक ठुमरी है - देखो रोको न छैल, गैल मोरी मन कर बरजोरी श्याम बनवारी रे, ए नटवर गिरधारी, मैं तो पैंया लागूँ तोरी, वो तो ऐसो ढीठ भयो री। ताल - पंजाबी अद्धा ताल।

2. बोल बनाव की ठुमरी - बोल बनाव की ठुमरियाँ बोल-बाँट की ठुमरियों की तुलना में सरल होती है। बोल-बाँट की ठुमरियों की भाँति यह ठुमरियाँ उतनी

लयबद्ध नहीं होती। विलंबित रूप में गाये जाने के कारण कलाकार गायन के समय अपनी इच्छानुसार गायकी का प्रदर्शन कर सकते है। इस प्रकार की ठुमरी शैली को ख्याल-अंग की ठुमरी भी कहा जा सकता है।

श्रृंगार रस के संयोग एवं वियोग दोनों पक्ष को इस प्रकार के ठुमरियों में प्राधान्य दिया जाता है।

बोलबनाव की ठुमरियाँ विलंबित लय में गाई जाती है। इन ठुमरियों में प्रयुक्त मुख्य तालें हैं दीपचंदी, तीनताल, रूपक, जत, पंजाबी, अद्धा इत्यादि।

बोलबनाव की ठुमरियों के कुछ उदाहरण है -

1. गिरिजा देवी जी द्वारा राग भैरवी में गाई ठुमरी - ''नाहक लाए गवनवा आप तो सैया विदेसवा में छाए मोरा रे हे राम''। ताल - विलंबित दीपचंदी

2. अमानत अली एवं फहत अली द्वारा गाई भैरवी राग की ठुमरी - ''कब आओगे, तुम आओगे, मोरा तुम बिन जियरा उदास रहे''। ताल - विलंबित रूपक ताल।[7]

3. उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ द्वारा गाई राग पीलू की ठुमरी - ''का करुँ सजनी, आये ना बालम''। ताल - कहरवा (धीमी लय)

इस प्रकार के ठुमरियों की सौन्दर्यता सुर लगाने की आदायगी में होती है। यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि शब्दों का चुनाव ठीक हो एवं उन शब्दों को लेकर विभिन्न शास्त्रीय राग जैसे पहाड़ी, खमाज, माँझ खमाज, देस, तिलंग, पीलू, भैरवी, काफी आदि रागों में बढ़त करते हुए विभिन्न भावों को अभिव्यक्त की जा सके। गायन शौली के आधार पर बोल बनाव की ठुमरियों का दो मुख्य अंग हैं - पूरब अंग एवं पंजाब अंग।

1. पूरब अंग की ठुमरी बोलबनाव के अन्तर्गत जिन ठुमरियों का प्रचार एवं प्रसार पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं बिहार आदि प्रान्तों में अधिक हुआ है उसे

'पूरब अंग की ठुमरी' या पूरबी ठुमरी कहा जाता है। इन ठुमरियों में भारत के पूर्वी भागों की लोग धुनों का गहरा प्रभाव होता है। इस प्रकार की ठुमरियों में कुशल कलाकार मूल राग के साथ अन्य राग अथवा उस थाट के अन्तर्गत अन्य रागों का भी सुंदरता के साथ प्रयोग करते हैं। ठुमरी गायन में विशेष रूप से पूरब अंग की ठुमरी गायन में राग मिश्रण से सौन्दर्य वृद्धि होती है। इन ठुमरियों में कण, मुर्की, खटका, ज़मज़मा, काकु भेद आदि अलंकरणों का प्रयोग सुन्दरता उत्पन्न करती है।

ऐसा माना जाता है कि ठुमरी गायन विधा का प्रचार एवं प्रसार पहले लखनऊ में हुआ। वहाँ से यह गायन विधा बनारस पहुँची। यद्यपि दोनों स्थानों में गाई जाने वाली ठुमरियों में अनेक समानता है परन्तु गायन शैली की ढंग, अन्दाज़ एवं रचना-शैली के आधार पर सूक्ष्म भेद करते हुए पूरब अंग की ठुमरियों को दो मुख्य गायन शैली में पृथक् किया जा सकता है। जो इस प्रकार हैं - लखनवी शैली एवं बनारसी शैली।

क. लखनवी शैली - लखनऊ अंचल में ठुमरी का जो रूप विकसित एवं साथ-साथ लोकप्रिय भी हुआ उसमें अवधी एवं उर्दू भाषा का प्रभाव ज्यादा था। लखनवी शैली के ठुमरियों में नवाबी अन्दाज़ के नज़ाकत एवं नफासत की एक ख़ास बात यह भी है कि उन ठुमरियों के बीच-बीच में उर्दू शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। लखनवी शैली की ठुमरी का एक सुंदर उदाहरण है -

''नवाब वाजिद अली शाह द्वारा रचित भैरवी की ठुमरी - बाबुल मोरा नैहर छूटो ही जाए, चार कहार मिल डोलिया उठावें, अपना बेगाना छूटा ही जाय।

इसमें 'बेगाना' शब्द उर्दू भाषा का है जिसका अर्थ 'पराया' होता है और इस शब्द का उपयुक्त स्थल पर प्रयोग किया गया है।''[8]

इन सभी प्रकार के प्रयोगों में ही लखनवी शैली की ठुमरियों की सौन्दर्यता प्रतीत होती है। ''लखनवी शैली के ठुमरी गायन में कहीं-कहीं टप्पा शैली की झलक दिखाई देती है, क्योंकि लखनऊ में 'ठुमरी' के साथ टप्पा का भी खूब प्रचार था। उस्ताद 'सादिक अली खाँ' द्वारा रचित राग भैरवी की एक ठुमरी का उदाहरण प्रस्तुत है, जिसमें टप्पा शैली के छोटे-छोटे स्वर-समूहों का प्रयोग किया गया है -

ठुमरी-भैरवी-ताल पंजंजाबी (विलम्बित) इसके अलावा लखनवी शैली में कुछ स्वर समूहों को विशेष ढंग से प्रयोग किए जाने की भी प्रथा दृष्टिगत होती है, प्रसिद्ध ठुमरी गायिका 'बेगम अख्तर' की गायकी लखनवी अंग से प्रभावित थी। उनकी गायकी को पूरब एवं पंजाब अंग का मिश्रण कहा जाता है।

ख. बनारसी शैली - ''कुछ लेखकों का कहना है कि लखनऊ के बिंदादीन के भाई कालका प्रसाद ठुमरी शैली को बनारस ले गए और उन्हीं के द्वारा वहाँ की तवायफ़ों में इसका प्रचार हुआ।''[10] अपनी कुछ निजी विशेषताएँ जैसे सुंदर स्वर लगाव, शांत गायकी, सरलता, सुंदरता, बोलबनाव आदि के कारण ठुमरी के क्षेत्र में बनारस शैली की ठुमरियाँ एक विशिष्ट स्थान बना चुकी हैं। इन ठुमरियों की सौन्दर्यता का वर्णन करते हुए सुप्रसिद्ध गायिका गिरिजा देवी जी का कहना है - ''काशी की ठुमरी में ग्रामीण सौंदर्य है जो वास्तविक सौंदर्य है। इसमें बहुत लगाव, बझाव, खटर-पटर कुछ नहीं है। बड़ी शांत और सीधे भाव की है।''[11]

बनारस-अंग की ठुमरियों की सौन्दर्यता इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है -

इस शैली की ठुमरियाँ बहुत ही लचीली एवं हृदयस्पर्शी होती है। इनमें चैनदारी है एवं सुरों की मधुरता विद्यमान है। इनमें हूक, पुकार, दर्द आदि काकु का विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। बनारसी शैली की ठुमरियों का उदाहरण इस प्रकार है -

ठुमरी - राग भैरवी
स्थाई : बारे बलम फूल गेंदवा न मारो
लगत करेजवा में चोट
अंतराः सैंया निरमोंहिया दरदिया,
रखत पलकिया की ओट।
ठुमरी - राग मिश्र गारा
स्थाई : पानी भरे री कौन
अलबेली की नार झमाझम

अंतराः हाथ रसरिया कांधे गगरिया, बांकी चितवन से मोहे घायल करे री।

कौन अलबेली की नार झमाझम।[12]

पंजाब अंग की ठुमुमरी

ठुमरी विधा लखनऊ दरबार से निकलकर समस्त भारतवर्ष में लोकप्रिय हुई।

उत्तर भारतीय संगीत में बोलबाँट की 'पछाहीं ठुमरी' एवं बोलबनाव को 'पूरबी शैली की ठुमरी' के अलावा 'पंजाब अंग' की ठुमरी भी आज लोकप्रिय है। संगीत के विद्वानों का मानना है कि पंजाब में ठुमरी गायकी की परम्परा बीसवीं शताब्दी के प्रारभिक दशकों में शुरू हुई थी। ''पंजाब अंग की ठुमरी को अस्तित्व में लाने का श्रेय सुप्रसिद्ध गायक अलीबख्श खाँ को दिया जाता है। पूरब की ठुमरी शैली से प्रभावित होकर उन्होंने ही पंजाब के लोकगीतों के सहारे सर्वप्रथम पंजाब अंग में अनुवाद किया। अलीबख्श के पश्चात् उनके पुत्र बड़े गुलाम अली खाँ ने उसे अपनी विशिष्ट गायन शैली के आधार पर 'पंजाब अंग की शैली' के रूप में प्रतिष्ठित किया।''[13]

स्वर वैचित्रय, कण, खटका, मुर्की छोटे-छोटे तान, बोलतान आदि का प्रयोग पंजाब अंग की ठुमरी की विशेषता है। टप्पा अंग की छोटी-छोटी तानों के प्रयोग से भी इन ठुमरियों में सुन्दरता आती है। उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ की गाई पीलू की ठुमरी के शब्द हैं -

1. ''सैया बोलो तनिक मोसे रहियो ना जाए करो हँस हँस बतियाँ, लागो मोरी छतियाँ मिल प्रेम-प्रेम पिरो लो।''[14]

उन्हीं की गाई - राग तिलककामोद पर आधारित और एक ठुमरी है -

2. ''तन मन धन तोपे वारूँ ना हमका पिया ना बिसारो ना बाज़ी खेली प्रेम की, उपर लगाऊँ जी, हार गई तो पी की, जीन गई तो पी की''[15]

अतएव ठुमरी की लोकप्रियता को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि आने वाले समय में ठुमरी गायन शैली की अन्य अनेक शैलियाँ अपनी विशेषताएँ एवं सुंदरता के साथ विकसित होगी। उन ठुमरियों की रचनाकार, सुरकार, गायक, गायिका सभी को यह बात अवश्य ध्यान रखनी होगी कि ठुमरी का प्रधान उद्देश्य है काव्य एवं स्वरों के माध्यम आत्मानुभूति एवं सुंदरता को उत्पन्न करना।

ठुमरी गायन एवं सौंन्दर्य

प्रत्येक ठुमरी की एक विशेष भाव होती है। उस भाव को प्रकट करने के लिए उपयुक्त राग का प्रयोग होना बहुत जरूरी है। ठुमरियों में स्वर-सौंदर्य राग-रागिनियों के माध्यम से होता है। विभिन्न रागों को अपने-अपने अन्दाज़ में गाते हुए कलाकार बढ़त करते हैं तथा भावों की सृष्टि करते है एवं उन्हीं भावों से ही ठुमरियों में सुंदरता आती है। भाव एवं गायकी-ठुमरी की विशेषता है। ठुमरी गायन में भाव प्रदर्शन को विशेष महत्व दिया जाता है। सुंदर स्वरालंकारों से सजाकर गीत को ऐसे ढंग से गाया जाता है जो श्रोताओं को मुग्ध करता है। जैसे कोई नर्तक, मुद्रा-हाव-भाव, नृत्य आदि के माध्यम से अपने भावों को व्यक्त करती है, उसी तरह ठुमरी में कलाकार स्वर-रचना, बोल-बनाव आदि की सहायता से अपनी कला का प्रदर्शन करते है। ठुमरी में 'रस' की भी काफी विशेषता होती है। रसभरी अन्दाज़ से ठुमरियों में सुंदरता आती है। ''ठुमरी में विभिन्न रस जैसे श्रृंगार, भक्ति, शान्त आदि रसों का प्रयोग किया जाता है। किंचित करूण रस भी समावेशित रहता है। भक्ति रस ने भी अपना एक विशेष स्थान बना लिया है। पहले राजदरबारों में ठुमरी नृत्य के साथ गाई जाती थी इसलिए श्रृंगार की प्रधानता रहती थी परन्तु महफिल की ठुमरी में सभी रस पाए जाते हैं। ठुमरी में प्रयुक्त विशिष्ट राग विशिष्ट रसों का निर्माण करते हैं।''[16]

ठुमरी गायकी की सौन्दर्यता किसमें निहित है इस विषय पर अंजली पोहनकर जी ने अपनी पुस्तक में लिखा है - ''इसका सौन्दर्य हमें कहाँ पर खास नज़र आता है? यह प्रश्न हमारे मन में उभरने लगते है। ठुमरी इतिहास के बारे में जानकारी लेने और सुनने के बाद ऐसा लगता है कि ठुमरी एक अत्यन्त सूक्ष्म पारदर्शक कोमल श्रृंगारयुक्त रसीली गानविधा है, जिसे हम सुनकर उसकी गहराई का

अंदाजा लगा सकते हैं।''[17]

ठुमरी में साहित्य को अधिक महत्व दिया जाता है। गायिका सिद्धेश्वरी देवी जी द्वारा गाई राग भैरवी की लोकप्रिय ठुमरी ''रस के भरे तोरे नैन आजा साँवरिया तोहे गरवा लगा लूँ'' में उन्होंने जिस अन्दाज़ में अपनी गायकी की प्रदर्शन की है एवं भावों द्वारा सौन्दर्य को पेश की है, वो अतुलनीय है। उस्ताद अब्दुल करीम खाँ द्वारा गाई गई ठुमरी, जिसमें विरहिणी नायिका की हृदय व्यथा झलकती है वो है–

राग-जोगिया ''स्थाईः पिया मिलन की आस दिन-दिन जोबनवा नहीं जात अंतराः जबसे गये मोरी सुधहु न लीन्ही कैसे जाऊँ मैं पिया के पास''[18] इस ठुमरी में श्रृंगाररस के वियोग पक्ष को दर्शाया गया है। परन्तु उस वियोग में भी एक अद्‌भुत सुंदरता झलकती है।

ठुमरियों में पारिवारिक संबंधों को भी दर्शाया गया है। इसका एक उदाहरण है–

''ननदिया काहे मारे बोल,
अब ही मँगाऊ विख खाय मरुँगी''[19]

इस ठुमरी में ननद एवं भाभी की आपस की नोंक-झोंक झलक रही है। इस नोक-झोंक में भी एक मादकता है। कृष्ण-राधा का प्रेम वर्णन, होली खेलना, भगवान कृष्ण के साथ गोपियों का रंग-खेलना, रंगों की बौछार-आदि के वर्णन भी हमें होरी में मिलते हैं। इसका एक उदाहरण है -

राग-गारा ''मैं तो खेलूँगी उन्हीं से होरी गुइयाँ, मोहे गले लगाय बरजोरी, लेके अबीर, गुलाल कुमकुम रंग से भरी पिंचकारी गुइयाँ।

जाए घेरुँ डगर नहीं जाने दूँ घर, ऐसो ढीठ लंगर नहीं माने निडर आज शाम संग धूम मचावो, बिंदा लाऊँगी गहे बरजोरी गुइयाँ।''[20]

रचनाकार - बिंदंदादीन महाराज श्रृंगार रसात्मक और एक सुंदर ठुमरी है-

''राग पहाड़ी'' - ताल जत ''जाग परी में तो पिया के जगाये भोर होत जब पिया मोरे आये इन नैनन में, नींद कहां है? इन नैनन में आप समाये''[21] (तीनताल विलंबित लय में भी इस ठुमरी को गाया जा सकता है।)

इस आलेख में वर्णित सभी ठुमरियों की अपनी एक विशेषता है तथा सुदंरता है।

ठुमरियों में अधिक प्रयुक्त राग है - तिलककामोद, खमाज, पीलू, भैरवी, कालिंगड़ा, धानी, तिलंग, देस, बिहाग, पहाड़ी, झिंझोटी इत्यादि। ठुमरी अपनी मधुरता, भावयुक्त बोल बनाव, तान, मुर्की, गायन शैली इत्यादि के कारण भावुक श्रोताओं व जनसाधारण के हृदय में अपना स्थान बना चुकी है। अन्त में उपशास्त्रीय संगीत जगत की सुप्रसिद्ध गायिका शोभा गुर्टू जी के शब्दों से समाप्त करते हैं -

''ठुमरी एक भावपूर्ण, भरपूर कल्पना शक्ति से ओतप्रोत संगीत गायकी है जो मन को छू लेती है।''[22]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. संगीत चिन्तामणि-ले. आचार्य बृहस्पति।
2. भैरवी (संगीत शोध पत्रिका), प्रधान सम्पादक डॉ0 पुष्पम नारायण।
3. सफर ठुमरी गायकी का- अंजली पोहनकर।
4. ठुमरी एवं महिला कलाकार- पूर्णिमा द्विवेदी।
5. ठुमरी की उत्पत्ति विकास एवं शैलियाँ- डॉ. शत्रुध्न शुक्ल।
6. संगीत कला विहार - मई 1991.
7. संगीत उपशास्त्रीय संगीत अंक - जनवरी 2003.
8. भारतीय संगीत का इतिहास - डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे।
9. ठुमरी परिचय - श्रीमती लीला कारवल।
10. Vageeshwari - 2013-14, Faculty of Music & Fine Arts, University of Delhi.

''लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत के तत्व''

सुरेखा रानी

'लोक' शब्द का अर्थः- भारत में 'लोक' शब्द का प्रयोग प्राचीन काल से साहित्य में होता आया है। वेदों, उपनिषदों, भरतमुनि के नाट्यशास्त्र आदि ग्रन्थों में भी 'लोक' शब्द का प्रयोग हुआ है। अंग्रेज विद्वान ''फिलिप्स वार्कर'' के मतानुसार ''किसी आदिम समाज में उसके सभी सदस्य 'लोक' हुआ करते हैं।'' विस्तृत अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किसी समय राष्ट्र की सम्पूर्ण जनसंख्या के लिए किया जा सकता है, किन्तु पश्चिमी विद्वानों के मतानुसार 'लोक' शब्द उन लोगों के लिए प्रयुक्त होता है जो विशिष्ट संस्कृति से प्रभावित नहीं हैं, जो विधिवत शिक्षा के प्रभाव से दूर हैं, जो गॉव या गॉव के आगे-पीछे रहते हैं जो अशिक्षित या अर्द्धशिक्षित हैं। डा0 हजारी प्रसाद के अनुसार 'लोक' शब्द का अर्थ 'जनपद' या ग्राम्य नहीं, बल्कि नगरों और गॉवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिसके व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियॉ नहीं हैं। लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना एवं अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। 'लोकगीत' पाश्चात्य शब्द 'फोक सांग' का पर्यायवाची है। फोक सांग जर्मन शब्द टवसा ैसपमष का रूपांतर है। सामान्य रूप से इसका सम्बन्ध असंस्कृतिक समाज से है। लोकगीत शब्द लोक तथा गीत दो शब्दों के योग से बना है। 'लोक' का अर्थ है -

सर्वसाधारण जनता। यह शब्द उस जनसमूह का वाचक है जो साज-सज्जा, सभ्यता, शिक्षा आदि से दूर आदिम मनोवृत्तियों के अवशेषों से युक्त परिधि को समाविष्ठ करता है। लोकगीत जनमानस की अनुभूतियों की लयपूर्ण अभिव्यक्ति है और वे जीवन की यथार्थ भावनाओं को प्रस्तुत करते हैं। लोकगीतों में धरती गाती है, पहाड़ गाते हैं, नदियॉ गाती हैं, उत्सव और मेले, परम्पराऍं और ऋतुऍं गाती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि लोकमानस की अभिव्यक्ति करने वाले गीत को लोकगीत कहा जाता है।

लोकगीतों की उत्पत्तिः- इनकी उत्पत्ति अशिक्षित समाज की सम्पत्ति है जो विरासत के रूप में एक पीढ़ी को दूसरी पीढ़ी से प्राप्त हुई है। विद्वानों के अनुसार लोकगीतों की परम्परा श्रुति परम्परा के साथ-साथ वैदिक युग से चली आ रही हैं। लोक गीतों के उद्गम के विषय में 'देवेन्द्र सत्यार्थी' जी का कथन है ''जीवन के खेत में ये गीत उगते हैं, कल्पना भी अपना काम करती है रागवृत्ति भी, भावना भी और नृत्य का हिलोरा भी।''

लोकगीतों से रागोत्पत्ति का स्पष्ट संकेत निम्न श्लोक से होता है :-

''येशां श्रुति स्वर ग्राम जात्यादि नियमों न हि।
नानादेशं गतिच्छाया देशी रागास्तु ते स्मृताः''

अर्थात

जिन रागों में श्रुति, ग्राम, जाति इत्यादि का नियम नहीं होता और जिन पर विभिन्न लोक रूचियों का प्रभाव होता है, वे देशी राग है।

शास्त्रीय संगीत उसे कहते हैं जो शास्त्र के नियमानुसार प्रस्तुत किया जाए तथा लोक संगीत

शोध छात्रा, फैकल्टी ऑफ परफारमिंग आर्ट, महाराजा सयाजी राव, यूनिवर्सिटी ऑफ बड़ोदा

उसे कहा जा सकता है, जिसे स्त्रियॉं, बच्चे, राजा तात्पर्य सभी वर्गों के लोग अपनी इच्छा से आनन्दपूर्वक प्रयुक्त करते हैं 'देशी' या 'लोक' संगीत कहलाता है। शास्त्रीय संगीत सदा से लोक संगीत से उर्जा ग्रहण करता आया है। शास्त्रीय संगीत ने विभिन्न राग-रागनियों की सुसज्जित पोशाक पहन रखी है और लोकसंगीत केवल ध्वनि और लय के आंचल बॉधे हुए मस्ती भरे अंदाज में उन्मुक्त भ्रमण कर रहा है। वास्तव में संगीत की इन दोनों विद्याओं के महल ध्वनि और लय के आधार पर ही खड़े हुए है।

लोकगीतों में अलग-अलग अवसर के गीतों की अलग-2 लय है। इनकी प्रवाहमयता गीतों और रस पर आधारित हैं। चंचल प्रकृति के गीत द्रुत कहरवा में हैं। संयोग, श्रृंगार के गीतों में कहरवा, दादरा प्रयोग हुआ है। लोक संगीत में संस्कार गीतों का विशेष महत्व है। जन्म से मृत्यु तक हर संस्कार के अलग-2 गीत हैं, उनकी अलग-2 धुने हैं। 'बिहाईयां' जन्म संस्कार का गीत है जिसकी गति विलम्बित लय को होती है। इसी प्रकार विवाह संस्कार के गीतों में भी लम्बें और मार्मिक गीत विलम्बित लय में होते हैं। लोक गीतों में अधिकतर शास्त्रीय परम्परा के कहरवा, दादरा, खेमटा, दीपचन्दी का प्रयोग होता है।

प्रायः लोकगीतों में चार थाटों का अंश अधिक रूप में होता हैं :-

1) बिलावल 2) खमाज 3) काफी 4) भैरव थाट, लोकगीतों में प्रायः सात शुद्ध तथा विकृत कोमल एवंम कोमल स्वरों का प्रयोग मिलता है। कहीं-2 कोमल ऋषभ एवं कोमल धैवत का प्रयोग भी मिलता है। तीव्र मध्यम से युक्त लोकगीत कम हैं। अधिकांश लोकगीतों में तीन-चार या पॉच स्वर ही प्रयुक्त होते हैं। जबकि सम्पर्क बढ़ने के साथ-2 अब स्वर-परिधि भी बढ़ रही है। लोक धुनें सरल होती है किन्तु उनमें गायन के सौंदर्यवर्धक उपकरणों का अभाव नहीं होता। इनमें भी गाते समय खटका, मुर्की तथा मींड आदि का प्रयोग किया जाता है। शास्त्रीय संगीत में अनेक रागों का जन्म भी लोकधुनों से हुआ है जैसे :- आसावरी, पहाड़ी इत्यादि इसके उदाहरण हैं, जिनका मूल स्रोत लोकगीतों में खोजा जा सकता हैं। लोकगीतों में पुरूषों तथा स्त्रियों द्वारा गाये गए गीतों की स्वर संयोजिता में नितान्त भिन्नता दिखाई पड़ती है। पुरूष वर्ग की गम्भीर ध्वनि के साथ-2 उनके स्वरों के चयन में भी गम्भीरता दिखाई पड़ती है। इसमें रिषभ और गन्धार पर विशेष बल दिया जाता है। स्त्रियों के गीत कोमल भावनाओं से इतने अधिक प्रभावित होते है कि इन स्वर लहरियों में मध्यम स्वर एवं पंचम स्वर के साथ शुद्ध निषाद अथवा कोमल निषाद का प्रयोग होता है।

लय तो लोक संगीत में इस प्रकार समाई रहती है जैसे शरीर में रक्त। गाते अथवा बजाते समय उनके विलय होने का संदेह भी उत्पन्न नहीं होता। रागदारी में ताल के ठाह, दुगुन, आड़ आदि प्रकार करने होते हैं जो कि कष्ट साध्य है, किन्तु लोक गायन में यह कार्य भिन्न प्रकार से चाल बदलकर साध लिया जाता है। लोकगीतों में कई रागों का अर्धसप्तक ही प्रयुक्त होते हैं जैसे 'सा' से 'प' या 'सा' से 'म' तक।

इस प्रकार हम कहते सकते हैं कि लोकसंगीत शास्त्रीय संगीत का बीजरूप है।

किसी भी कला अथवा विद्या के शास्त्र का सृजन तभी सम्भव होता है, जब वह अस्तित्व में आकर विकसित हो। यही बात संगीत पर भी पूर्णरूपेण लागू होती है।

अमीर खुसरोः बहुआयामी व्यक्तित्व

...

अमीर बहुमुखी प्रतिभा संपन्न व्यक्ति थे। वे एक महान सूफी संत, कवि (फारसी व हिन्दवी), लेखक, साहित्यकार, निष्ठावान, राजनीतिज्ञ, बहुभाषी, भाषाविद्, इतिहासकार, संगीत शास्त्री, गीतकार, संगीतकार, गायक, नृतक, वादक, कोषकार, पुस्तकालयाध्यक्ष, दार्शनिक, विदूषक, वैध, खगोल शास्त्री, ज्योतिषी, तथा सिद्धहस्त शूर वीर योद्धा थे। सन 1273 ई0 में खुसरो जब बीस वर्ष के थे तब 113 वर्ष की आयु में उनके नाना एमादुलमुल्क रावत अर्ज का स्वर्गवास हो गया। ऐसे समय में जब कि खुसरो को इतनी अधिक लोकप्रियता मिल रही थी, उनके नाना के देहावसान से उन्हें जीवन का एक अति प्रचंड आघात पहुँचा क्योंकि उनके वालिद तो पहले ही परलोक सिधार चुके थे। अब खुसरो को अपनी रोजी रोटी की चिन्ता हुई। अतः अब उन्हें अपने लिए एक स्थाई रोजगार खोजने पर विवश होना पड़ा। शीघ्र ही खुसरो को एक स्नेही और उदारचेता संरक्षक प्राप्त हो गया। ये था दिल्ली का सुलतान गयासुद्दीन बलबन का भतीजा अलाउद्दीन मुहम्मद किलशी खाँ उर्फे मलिक छज्जू। (सन 1273 ई. कड़ा इलाहाबाद का हाकिम) ये अपनी वीरता के कारणवश प्रसिद्ध और शक्ति संपन्न मंगोल हलाकू ने उसे आधे इराक की गर्वनरी प्रस्ताव दिया था और शक्ति संपन्न मंगोल हलाकू ने उसे आधे इराक की गर्वनरी प्रस्ताव दिया था और उसकी स्वीकृति चाही थी। डॉ0 रामशंकर अमीर खुसरो ने उसे एक आदर्श व्यक्ति तथा शासक पाया और दो वर्ष वे उसके राजदरबार में शान बने रहे। मलिक छज्जू भी खुसरो से बड़ी कृपा और प्रेम का व्यवहार करता था। एक बार अमीर खुसरो उसके दरबार में बहुत ही देर से पहुँचे। बादशाह बहुत गुस्से में था क्योंकि कुछ चुगलखोर व खुसरो से जलने वाले दरबारियों ने खुसरो के खिलाफ बादशाह के कान भर दिए थे। इन दरबादियों ने बादशाह को भड़का दिया कि आजकल खुसरो अपने गुरु निजामुद्दीन औलिया की सेवा में अधिक समय व्यतीत करते हैं और राजदरबार से उन्हें कोई मतलब नहीं। बादशाह ने जरा सख्ती से खुसरो से दरबार में देर से आने का कारण पूछा। खुसरो ने अपने विनोद प्रिय, चुलबुले स्वभाव व हाजिर जवाबी का सबूत देते हुए तुरन्त बादशाह की तारीफ और प्रश्न के जवाब में एक फारसी का चुलबुला व हास्यजनक कसीदा सुनाया। ये है-

सुभा राव गुफ्तम कि खुर्शीद अद खुजास्त,
आस्मां रुहे मालिक छज्जो नमोद।

अर्थात- आज जब मैं घर से दरबार के लिए बाहर निकला तो मेरी सुबह से मुलाकात हो गई। मैंने सुबह से पूछा कि बता तेरा सूरज कहाँ है? तो आसमान ने मुझे मलिक छज्जू की सूरत दिखा दी। यह बाकया कसीदे के रुप में सुनकर बादशाह के चेहरे पर अचानक ही मुस्कुराहट आ गई और उसका सारा गुस्सा काफूर हो गया। दरबारियों के मुँह से भी बाह निकली। अमीर खुसरो से जलने वाले समस्त दरबारी बहुत ही मायूस हुए तथा हतप्रभ रह गए। बादशाह ने प्रसन्न होकर अमीर खुसरो को

संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू वि0 वि0, वाराणसी

दरबार में देर से आने के लिए माफ ही नहीं किया बल्कि इस हास्यजनक किस्से का सुनकर हँसने के लिए इनाम भी दिया। मलिक छज्जू के राजदरबार में ख्ुासरो केवल दो वर्ष ही टिक पाए। हुआ यूँ कि एक रात शहनशाह हिन्दुस्तान गयासुद्दीन बलबन का बड़ा साहबजादा, बुगरा खाँ मिलने आया छज्जू से। उसने तत्काल फरमाइश की, मेरे अजीज भाई छज्जू तुम्हारा बड़ा नाम है। अरे एक से एक नामवर तुम्हारे सामने गर्दन झुका कर बैठता है। सूरमाँ, गवैये और शायर भी। हम भी तो जरा इसकी झलक देखें। यह सुनकर मलिक छज्जू ने हुक्म दिया- यमीनुद्दीन खुसरो ने अपना कलाम पेश करें, हमारे मेहमाने अजीज के सामने। तब अमीर खुसरो ने अपनी एक ताजा फारसी की गजल सुनाई- 'सर इन खुदुदु जुई न दौरत की तिदौरी। इन नरगिसी जौबई न दौलत कि तिदौरी। इ नुशते अमा जुल खबमा श्यास खरामा इन हल्केई गेसूई न दौरत की तिदौरी।' अर्थात- तेरी इन नरगिसी आँखों काली हसीन जुल्फों के आगे दौलत क्या चीज है। यह मधुर व कर्णप्रिय गजल सुनकर बुगरा खाँ बोला - 'वाह! अरे ऐसे हीरे लिए बैठे हो जाने ब्रादर। अरे ऐसे आबदार हीरे मोती तो हमारे खजाने को ससम्मान दिया जाए। खुसरो अभी तो हम सफर में हैं, खुद ही मेहमान हैं। कभी हमारी तरफ समाना आओ तो तुम्हें और भी इनाम देंगे। क्यों मेरे भाई छज्जो तुम्हें नागवारा तो नहीं गुजरा कि तुम्हारे दरबारी शायर को हमारी सरकार की ओर से इनाम दिया जाए। और वो भी तुम्हारी मौजूदगी में तथा तुमसे बिना पूछे। ऊपर से तो मलिक छज्जू ने कह दिया कि उसे बुरा नहीं लगा पर अंदर से उसे अमीर खुसरो पर बेहद गुस्सा आया कि उसके दरबार में बिना उसकी इजाजत के अमीर खुसरो ने दूसरी सरकार से ईनाम लिया। कड़ाके होने वाले सूबेदार मलिक छज्जू की कड़ी नजरें अमीर खुसरो ने पहचान ली थीं। इससे पहले कि मलिक छज्जू के गुस्से का तीर, खुसरो को निशाना बनाता, वे तीर की तरह उसकी कमान से निकल गए। और सीधे बलबन के छोटे लड़के बुगरा खाँ (सन 1276 ई.) के यहाँ गए जो मुलतान (पंजाब) के निकट सामाना में बलबन की छावनी का शासक व संरक्षक था जो अब मौजूदा दौर में पटियाला (पंजाब) में है। बुगरा खाँ ने अमीर खुसरो का अपना नमीदे खास (मित्र) बना कर रखा। बुगरा खाँ ने खुसरो को बुलबले-हजार-दास्तान की उपाधि दी। मौज-मस्ती, शरो-शयरी, किताबखानी और शग्ले जवानी के रात-दिन चल रहे थे कि अचानक ही बंगाल से बगावत की खबर आई। बुगरा खाँ ने कहा- ष्सामने शफर को रुख करो। तख्ते देहली से यह हुक्म पहुँचा है कि पंजाब की फौज ले कर बंगाल पहुँचो। हम खुद लश्कर ले कर जाएँगे। शायर खुसरो साथ जायेगा। फिर सामाना से लखनऊ की ओर कूच करेंगे। मैदाने जंग में भयंकर युद्ध हुआ। जितनी जबरदस्त बगावत थी उतनी ही बेरहमी से कुचली गयी। देहली और पंजाब की फौजों ने खड़े खेत जला दिए। बागियों को गधे की खाल में भरवाकर सरे बाजार से इस बेदर्द, चीड़-फाड़ और अंधाधुंध लूटमार की शिकायत की। अमीर खुसरो ने अपनी जिंदगी में पहली बार इतने करीब से जंग को देखा तथा उसके दर्द को गहराई से महसूस किया। उन्होंने बड़े पैमाने पर तबाही को महसूस किया। एक कलाकार, शायर, लेखक के नाते उनके नाजुक व भावुक दिल को बहुत दुख हुआ। परन्तु खुसरो के होंठ सिले रहे। इस दर्दनाक मौके पर खुसरो ने कुछ नहीं लिखा। उनकी लेखनी मौन रही। खुसरो जैसे प्रेमी जीव को शायरी का कहाँ होश था? इस खूनी युद्ध में। लखनौती में विजय प्राप्त करने के पश्चात बलबन ने बुगरा खाँ को लखनौती व बंगाल का मार्शल लौ (एडमिनिस्ट्रटर) मुकर्रर कर के वहीं छोड़ दिया। शाहजादे को सलाह और राय देने के लिए प्रसिद्ध कवि शमशुद्दीन दबीर को नियुक्त किया गया था। उसने व बुगरा खाँ ने दरबारी शायर खुसरो को बहुत रोका मगर वो हजार बहाने कर के शाही लश्कर के साथ दिल्ली चले आए। अपनी माँ दौलत नाज और गुरु निजामुद्दीन औलिया के कदमों में। खुसरो ने बुगरा खाँ और कलशी खाँ की शत्रुता के कारण वहाँ रहना उचित न समझा और तत्काल सरकारी सेना के साथ दिल्ली चले आए। दिल्ली में इस विजय की खुशी में घर-घर दीप जलाए गए

थे। स्वयं अमीर खुसरो अपने एक दीवान में, इस विषय में विस्तार से लिखते हैं कि - माँ की ममता, गुरु का आध्यात्मिक लगाव, और देहली की मोहब्बत, गंगा-जमुना के किनारे मुझे हर जगह से, हर एक कदरदान से खेंच लाती थी। मेरी शायरी तो उड़ी फिरती थी और मैं खुद उड़ फिर कर देहली या पटियाला चला आता था। मगर आखिर घर बढ़ा, खर्चे बढ़े, और दरबारी आना-बान व ठाट-बाट के तो कहने ही क्या?

इस दौरान अमीर खुसरो की मित्रता हसन सिज्जी देहलवी से हुई। हसन भी फारसी में किवता करता था। उसकी नानबाई की दुकान थी। वह खुसरो की तरह रईस नहीं था पर फिर भी खुसरो ने उसके नैसर्गिक गुण देख कर उससे मित्रता की। ये जग प्रसिद्ध कृष्ण और सुदामा की मित्रता से किसी भी प्रकार कम न थी। समय-समय पर खुसरो ने अपने मित्र के लिए कपट सहे। इसका जिक्र आगे करेंगे। पहले यह देखें कि यह मित्रता व मुलाकात कैसे हुई? हसन अपनी दुकान पर रोटियाँ बेच रहा था। तँदूर से गरम-गरम गदबादी रोटियाँ थाल में आ रहीं थीं। ग्राहक हाथों हाथ खरीद रहे थे। अमीर खुसरो दुकान के सामने से गुजरे तो उनकी दृष्टि हसन सिज्जी पर पड़ी। अमीर खुसरो बचपन से ही हँसी-मजाक व शरारत में आनंद लेने वाले बेहद ही विनोद प्रिय व्यक्ति थे। उन्होंने हँसते हुँए हसन से पूछा-नानबाई रोटियाँ क्या भाव दी हैं? हसन ने भी बहुत सोच समझ कर तत्काल उत्तर दिया- मैं एक पलड़े में रोटी रखता हूँ और ग्राहक से कहता हूँ दूसरे पलड़े में सोना रख। सोने का पलड़ा झुकता है तो रोटी खरीददार को देता हूँ। खुसरो ने प्रश्न किया कि ग्राहक गरीब हो तब? हसन ने बेहद ही सहजता से जवाब दिया- तब आर्शीवाद के बदले रोटी बेचता हूँ। इस प्रश्नोत्तर के परिणामस्वरूप हसन और खुसरो में ऐसी घनिष्ठ व अटूट मित्रता हुई कि वे जन्म भर साथ-साथ रहे। शरीर दो थे पर आत्मा एक। इस मित्रता के लिए खुसरो को अनेक लांछन सहने पड़े पर मित्रता में किसी प्रकार की कोई कमी न आई। दोनों मित्रों को गयासुद्दीन बलबन के दरबार में उच्च स्थान मिला।

प्रारंभिक दिनों में खुसरो ने बलबन की प्रशंसा में अनेक कसीदे लिखे। दिल्ली लौटने पर गयासुद्दीन बलबन ने अपनी जीत के उपलक्ष्य में उत्सव मनाया। उसका बड़ा लड़का सुल्तान मोहम्मद अहमद (मुल्तान, दीपालपुर की सरहदी छावनी) भी उत्सव में सम्मलित हुआ। खुसरो को अब दूसरे आश्रयदाता की जरुरत थी। उन्होंने सुल्तान मुहम्मद को अपनी कविता सुनाई। उसने खुसरो की कविताएँ बहुत पसंद की और उन्हें अपने साथ मुलतान ले गया। यह सन 1281 का वाकया है। वहाँ सिंध के रास्ते सूफियों, दरवेशों, साधुओं और कवियों का अच्छा आना जाना था। मुल्तान से पंजाबी-सिन्धी बोलियाँ मिली-जुली चलती थीं। खुसरो ने यहाँ लगभग पाँच साल शायरी और संगीत के नए-नए तजुर्बे किए। शहजादे की परख गजब की थी।

हर कमाल की जी खोल कर तारीफ करता, दिल बढ़ाता था। सुल्तान मोहम्मद ने ईरान के प्रसिद्ध फारसी कवि शेख सादी को अपने दरबार में आने के लिए आमंत्रित किया। शेख सादी ने अपनी वृद्धावस्था के कारण आने में असमर्थता व्यक्त की और कहा कि हिन्दुस्तान में अमीर खुसरो जैसा कमाल का शायर मौजूद है। उनकी महानता का ही परिचायक है। इससे पता चलता है कि उस समय खुसरो की ख्याति व प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली थी। बीच में खुसरो प्रति वर्ष दिल्ली आते जाते रहे। अंतिम वर्ष मंगोलों के एक लश्कर ने अचानक ही हमला कर दिया। बादशाह के साथ अमीर खुसरो भी अपने मित्र हसन सिज्जी के साथ लड़ाई में सम्मलित हुए। कितनी रोचक बात है कि एक शायर युद्ध के मैदान में जंग लड़ रहा है। कहते हैं कि अमीर खुसरो जंग के मैदान में एक हाथ में तलवार तो दूसरे हाथ में किताबदान लिए बड़ी शान से निकला करते थे। खैर, इस युद्ध में दुश्मन की ताकत का पता बहुत देर से चला। हिन्दुस्तानी फौज बैखबरी का शिकार हो गई। हवा पलट गई। शाहजादा जंग के मैदान में मारा गया। खुसरो और हसन भी मैदाने जंग में गिरफ्तार हुए। एक मंगले सरदार खुसरो को घोड़े के पीछे दौड़ाता हुआ और

फिर घसीटता हुआ हिरात और बलख ले गया। वहाँ खुसरो को किले में हसन भी मैदाने जंग में गिरफ्तार हुए। एक मंगोल सरदार खुसरो को घोड़े के पीछे दौड़ाता हुआ और फिर घसीटता हुआ हिरात और बलख ले गया। वहाँ खुसरो को किले में बंदी बना लिया गया। कारागार में रहते समय खुसरो ने अनेक शोक गीत (मर्सिये) लिखे जिनमें मंगोलों के साथ युद्ध करते समय राजकुमार सुलतान मोहम्मद की वीरतापूर्ण मृत्यु का उल्लेख था। खुसरो ने अपनी कारावास कथा बड़ी ही मार्मिक शैली में लिखी है- शहीदों के रक्त ने जल की तरह धरती को लीप दिया। कैदियों के चेहरों को रस्सियों से इस तरह बाँध दिया जैसे हार में फूल गूँदे जाते हैं। जीन के तस्मों की गाँठ से उनके सिर टकराते थे और लगाम के फन्दे में उनकी गर्दन घुटती थी। मुझे जल प्रवाह के समान तेजी से भागना पड़ा और लम्बी यात्रा के कारण मेरे पैरों में बुदबदों की तरह फफोले उठ आए तथा पैर छलनी हो गए। इन मुसीबतों के कारण जीवन तलवार की मूठ की तरह कठोर जान पड़ने लगा। और शरीर कुल्हाड़ी के हत्थे के समान सूख गया। दो वर्ष पश्चात किसी प्रकार अपने कौशल और साहस के बल पर अमीर खुसरो शत्रुओं के चुंगल से छूट कर वापस दिल्ली लौटे। लौटने पर वे गयासुद्दीन बलबन के दरबार में गए और सुलतान मोहम्मद की मृत्यु पर बड़ा करुण मर्सिया पढ़ा। इसे सुनकर बादशाह इतना रोये कि उन्हें बुखार आ गया और तीसरे दिन उसका देहांत हो गया। (सन 1287)।

इसके पश्चात खुसरो दिल्ली में नहीं रहे। अपनी माँ के पास पटियाली ग्राम चले गए। वहाँ कुछ समय चिंतन में बिताया। स्वयं खुसरो लिखते हैं- मैं इन्हीं अमीरों की सोहबत से कट कर माँ के साए में रहा। दुनियादारी से आँख मूँद कर गरमा गरम गजल लिखी, दोहे लिखे। अपने भाई के कहने से पहला दीवान तोहफतुस्सिग्र तो तैयार हो चुका था। दूसरो दीवान वस्तुल हयात (जिंदगी के बीच का भाग- 684 हिज्री सन 1284) पूरा करने में लगा था। एक तरफ किनारे पड़ा हुआ दिलों को गरमाने वाली गजलें लिखता रहता था। राग-रागिनियाँ बुझाता था। वसतुल हयात में 18-24 वर्ष और बत्तीस से तैंतीस साल की उम्र तक का कलाम है। कसीदे ज्यादातर सुलतान मोहम्मद, निजामुद्दीन औलिया, कशलू खाँ, बलबन, कैकुबाद, बुगरा खाँ, शमशुद्दीन दबीर तथा जलालुद्दीन खिलजी की तारीफ में हैं। सुल्तान मोहम्मद पर मर्सिया भी है। कसीदों में खाकानी और कमाल अस्फहानी की काव्य शैली को अपनाने की कोशिश की गई है।

इसके बाद सन 1286 ई. में खुसरो अवध के गवर्नर (सूबेदार) खान अमीर अली सृजनदार उर्फ हातिम खाँ के यहाँ दो वर्ष तक रहे। यहाँ खुसरो ने इन्हीं अमीर के लिए अस्पनामा नामक पुस्तक लिखी खुसरो लिखते हैं- वाह क्या सादाब सरजमीं है ये अवध की। दुनिया जहान के फल-फूल मौजूद। कैसे अच्छे मीठी बोली के लोग। मीठी व रंगीन तबियत के इंसान। धरती खुशहाल जमींदार मालामाल। अम्मा का खत आया था। याद किया है। दो महिने हुए पाँचवा खत आ गया। अवध से जुदा होने को जी तो नहीं चाहता मगर देहली मेरा वतन, मेरा शहर, दुनिया का अलबेला शहर और फिर सबसे बढ़कर माँ का साया, जन्नत की छाँव। उफ्फो ओ दो साल निकल गए अवध में। भई बहुत हुआ। अब मैं चला। हातिमा खाँ दिलो जान से तुम्हारा शुक्रिया मगर मैं चला। जरो माल पाया, लुटाया, खिलाया, मगर मैं चला। वतन बुलाता ध ारती पुकारती है। अब तक अमीर खुसरो की भाषा में बृज व खड़ी (दहलवी) के अतिरिक्त पंजाबी, बंगला और अवधी की भी चाश्नी आ गई थी। अमीर खुसरो की इस भाषा से हिन्दी के भावी व्यापक स्वरुप का आधार तैयार हुआ जिसकी सशक्त नींव पर आज की परिनिष्ठित हिन्दी खड़ी है। सन 1288 ई. में खुसरो दिल्ली आ गए और बुगरा खाँ के नौजवान पुत्र कैकुबाद के दरबार में बुलाए गए। कैकुबाद का पिता बुगरा खाँ बंगाल का शासक था। जब उसने सुना कि कैकुबाद गद्दी पर बैठने के बाद स्वेच्छाचारी और विलासी हो गया है तो अपने पुत्र को सबक सिखाने के लिए सेना ले कर दिल्ली पहुँचा। लेकिन इसी बीच अमीर खुसरो ने दोनों के बीच शांति संधि कराने में एक महत्वपूर्ण भूमिका

निभाई। इसी खुशी में कैकुबाद ने खुसरो को राजसम्मान दिया। खुसरो ने इसी संदर्भ में किरानुस्सादैन (दो शुभ सितारों का मिलन) नाम से एक मसनवी लिखी जो 6 मास में पूरी हुई। (688 हिज्री। सन 1288 उम्र 35 वर्ष, मूल विषय है बलबन के पुत्र कैकुबाद का गद्दी पर बैठना, फिर पिता बुगरा खाँ से झगड़ा और अंत में दोनों में समझौता। उस समय के रहन सहन, तत्कालीन इमारतें, संगीत, नृत्य आदि का चित्रण। इसमें दिल्ली की विशेष रुप से तारीफ है। अतः इसे मसनवी दर सिफत-ए-देहली भी कहते हैं। शेरों की भरमार है। अमीर खुसरो अपनी इस मसनवी में लिखते हैं कि कैकुबाद को उनके गुरु निजामुद्दीन औलिया का नाम भी सुनना पसंद नहीं था। खुसरो आगे लिखते हैं- क्या तारीखी वाकया हुआं बेटे ने अमीरों की साजिश से तख्त हथिया लिया, बाप से जंग को निकला। बाप ने तख्त उसी को सुपुर्द कर दिया। बादशाह का क्या? आज है कल नहीं ऐसा कुछ लिख दिया है कि आज भी लुत्फ दे और कल भी जिंदा रहे। अपने दोस्तों, दुश्मनों की, शादी की गमी की, मुफलिसों और खुशहालों की, ऐसी-ऐसी रंगीन, तस्वीरें मैंने इसमें खेंच दी है कि रहती दुनिया तक रहेंगी। कैसा इनाम? कहाँ के हाथी-घोड़े? मुझे तो फिक्र है कि इस मसनवी में अपनी पीरो मुरशिद हजरत ख्वाजा निजामुद्दीन का जिक्र कैसे पिरोऊँ? मेरे दिल के बादशाह तो वही हैं और वही मेरी इस नज्म में न हों, यह कैसे हो सकता है? ख्वाजा से बादशाह खफा है, नाराज हैं दिल में गाँठ है, जलता है। ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया ने शायद इसी ख्याल से उस दिल कहा होगा कि देखा खुसरो, ये न भूलो कि तुम दुनियादार भी हो, दरबार सरकार से अपना सिलसिला बनाए रखो। मगर दरबार से सिलसिला क्या हैसियत इसकी तमाशा है, आज कुछ कल कुछ। खुसरो को किरानुस्सादैन मसनवी पर मलिकुश्ओरा की उपाधि से विभूषित किया गया। सन 1290 में कैकूबाद मारा गया और गुलाम वंश का अंत हो गया।

बीच में कुछ समय के लिए शमशुद्दीन कैमुरस बादशाह बना पर अंततः सत्तर वर्षीय जलालुद्दीन खिलजी सन 1290 में दिल्ली के तखत पर आसीन हुआ। खुसरो ये प्रेम से खुसरो को हुदहुद (एक सुरीला पक्षी) कह कर पुकारते थे। इन्होंने अमीर की पदवी खुसरो को दी। अब अबुल हसन यमीनुद्दीन 'अमीर खुसरो बन गए। इनका वजीफा 12,000 मनका सालाना तय हुआ और बादशाह के ये खास मुहासिब हो गए। जलालुद्दीन सत्य, निष्ठा, साधु प्राकृति, विधा एवं कला प्रेमी तथा पारखी था। फारसी कवि खवाजा हसन, संगीतज्ञ मुहम्मद शाह, इतिहासकार जियाउद्दीन बरनी, संगीतज्ञाएँ फुतूहा, नुसरत नर्तकी, शम्शा खातून और तुर्मती आदि का उनके दरबार से जालालुद्दीन की तारीफ में अमीर खुसरो ने कसीदे लिखे जो गुर्रतुल कमाल में हैं। खुसरो ने अपनी प्रसिद्ध मसनवी मफ्ताहुल फतूह (विजयों की कंजी) (690 हिज्री/ सन 1290 ई., उम्र 37 में जलालुद्दीन की चार विजयों का वर्णन, मलिक छज्जू की बगावत और उसको सजा, अवध की जीत, मुगलों को हराना, छाइन की विजय आदि का वर्णन है। इसमें शेरों की भरमार है। जलालुद्दीन खिलजी ने खुसरो को मुसहफदार (प्रमुख लाइब्रेरियन) और कुरान की शाही प्रति का रक्षक बना दिया। जलालुद्दीन ने अपनी इस अधिक आयु में भी अपनी रुचियों को नहीं बदला था। खुसरो हर शाम उसकी महफिल में एक गजल प्रस्तुत करते और जब साकी जाम भर देता, सुन्दर किशोरी ललनाएँ नृत्य करने लगती तो अमीर खुसरो की गजलें मधुर स्वर लहरियों पर उच्चारित हो उठतीं। लेकिन इसके बावजूद भी खुसरो अपनी सूफी वाले पक्ष से पूर्णतः न्याय करते। खुसरो अपेक्षाकृत एक धार्मिक व्यक्ति थे। उन्हीं के एक कसीदे से यह विदित होता है कि वे मुख्य-मुख्य धार्मिक नियमों का पालन करते थे, नमाज पढ़ते थे तथा उपवास रखते थे। वे शराब नहीं पीते थे और न ही उसके आदि थे। बादशाहों की अययाशी से उन्होंने अपने दामन को सदा बचाए रखा। वे दिल्ली में नियमित औलिया साहब की खानकाह में जाते थे फिर भी वे नीरस संत नहीं थे, तथा शाहों और शहजादों की शराब-महफिलों में भाग जरुर लेते थे मगर तटस्थ भाव से यह कथन खुसरो के समकालीन इतिहासकार

जियाउद्दीन बरनी का है। खुसरो अब तक अपने जीवन के अड़तीस बसंत देख चुके थे।

इस बीच मालवा में चित्तौड़ में रणथम्भौर में बगावत की खबर बादशाह जलालुद्दीन को एक सिपाही ने ला कर दी। बगावत को कुचलने के लिए बादशाह युद्ध को जाएँगे। तलवार और साजों की झंकार साथ जाएगी। कहाँ है वो हमारा हुदहुद। वो शायर वो भी हमारे साथ रहेगा साये की तरह। क्यों खुसरो? खुसरो अपने स्थान से उठ खड़े हुए और बोले-जी हुजर। आपका हुदहुद साये की तरह साथ जाएगा। जब हुक्म होगा चहचहाएगा सरकार। जब तलवार और पायल दोनों की झंकार थम जाती है, जम जाती है जब शायर का नगमा गूँजता है, कलम की सरसराहट सुनाई देती है। अब जो मैं आँखों देखी लिखूँगा वो कल सैकड़ों साल तक आने वाल आँखे देखेंगी हुजूर। बादशाह खुश हुए और बोले-शाबाश खुसरो। तुम्हारी बहादुरी और निडरता के क्या कहने। मैदाने जंग और महफिलें रंग में हरदम मौजूद रहना। तुम को हम अमीर का ओहदा देते हैं। तुम हमारे मनसबदार हो।

संदर्भ ग्रंथसूची-

1. चौबे डॉ0 सुशीन कुमा, हमारा आधुनिक संगीत, विनोद चंदपाण्डेय, लखनऊ, 1983
2. माधुर रामलाल, भारतीय संगीत और जतने बोहरा प्रकाशन जयपुर, 1997

संगीत और मनोविज्ञान

रामचन्द्र पासवान

कला की अभिव्यक्ति मानव जीवन में सृष्टि के प्रादुर्भाव के समय से ही रही है। अपनी अन्तर्भावनाओं को व्यक्त करने के लिये मनुष्य ने विभिन्न माध्यमों का प्रारम्भ से ही, सहारा लेना शुरू किया। अपने इर्द-गिर्द घटने वाली हर घटनाओं को, चाहे वह सुख प्रदत्त हो या दुःख प्रदत्त, व्यक्त करने में मानव ने प्रकृति का सशक्त सहारा भी सृष्टि के उद्‌भव काल से ही लेना प्रारम्भ किया है। यह उसकी विकसित हो रही मानसिकता ही थी, कि दुःख के समय में रोना था विषादयुक्त चिल्लाना तथा सुख की घटनाओं में विभिन्न प्रकार की हर्षयुक्त ध्वनि उत्पादित कर अपनी भावनाओं को व्यक्त करता आया है। कालान्तर में सृष्टि के विकास के साथ-साथ संगीत का भी विकास हुआ।

संगीत मनुष्य की आंरभिक अवस्था से जुड़ा हुआ है। प्रकृति में होने वाली समस्त क्रियाओं एवं बदलावों ने मानव को आश्चर्यचकित जैविक क्रिया की ओर मनुष्य अनजाने में ही जिज्ञासा के मोह-पाश में फँसता चला गया। मस्तिक (मनन) का कार्य ही है सोच एवं शंकों को जन्म देना और यही सोच एवं शंका, प्रगति एवं परिर्वतन की आधारभूत भूमि भी है। ब्रह्माण्ड में उपस्थित समस्त ध्वनियों ने मनुष्य को अलग-अलग वातावरण एवं प्रतिक्रियाओं में बाँटा है।

तत्पश्चात् उसने साथ ही अनुभव किया की हर ध्वनि पर उसकी प्रतिक्रिया, उसके भीतर एक अलग भाव एवं उत्तेजना को जन्म देती है। यहाँ भी उसे संगीत द्वारा अपने मनोविज्ञान पर होने वाले प्रभाव का पता नहीं था किन्तु यह क्रिया स्वाभाविक एवं प्राकृतिक थी। इन्हीं अलग-अलग भावों ने अलग-अलग ध्वनियों की (अमूर्त) श्रेणी एवं उसकी (मूर्त) पहचान बनाया जो बाद में एक निरंतर खोज एवं जिज्ञासा के कारण स्वर, राग एवं संगीत के शुद्ध रूप में सामने आयी। संगीत शास्त्रों में स्वरों का, जीव-जन्तुओं की बोलियों से संबंध इसी बात का प्रमाण है।

संगीत वह कला है, जिसके द्वारा संगीतज्ञ अपने ह्रदय के सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को स्वर व लय के द्वारा प्रकट करता है। संगीत मनुष्य के ह्रदय को संचालित करने के साथ-साथ अंतः स्थिति व्यक्त करने में भी सहयोगी होता है। कला कोई भी हो उसका उद्देश्य मानव मन के अमूर्त मनोभावों को मूर्त रूप देना तथा उसका लक्ष्य जीवन को सौंदर्यमय बनाते हुए मानव का आत्मिक उत्थान करना ही है। मनोविज्ञान अर्थात् मन का विज्ञान, यह विज्ञान की वह इकाई है जो मानव जीवन की मन स्थितियाँ, उनकी भावनाएं एवं चेतना से अवगत करना है। संगीत साधना में मनोविज्ञान का पक्ष अत्यंत प्रबल है।

आधुनिक युग में मनोविज्ञान जीवन के हर क्षेत्र में सफलता के लिए एक अचूक माध्यम के रूप में प्रयुक्त हो रहा है। जीवन के सैद्धांतिक और प्रायोगिक पहलुओं को मनोविज्ञान प्रभावित किए बिना नहीं रह पाता है। संगीत के परिप्रेक्ष्य में मनोविज्ञान के माध्यम से यह ज्ञात होता है कि बचपन से ही संगीत के प्रति व्यक्ति के रूचि, रूझान और व्यक्त करने के प्रवृत्ति कितनी है क्योंकि संगीत की दृष्टि में किसी भी मनुय में स्वर, लय संवादित्व और विस्तार के प्रति प्रारंभ से ही संवेदनशीलता विद्यमान रहती है जो उम्र के बढ़ने

के साथ-साथ बुद्धिमता के आवरण में बढ़ती रहती है। संगीत अपने आप में सृजन प्रक्रिया का द्योतक है। इसमें प्रदर्शन हो या शिक्षण, स सृजनशीलता हमेशा विद्यमान रहती है। किसी भी व्यक्ति में उसे अपने जन्म की तिथि या समय भले ही पता न हो किन्तु उसे बाल्यवस्था की कुछ धुंधली सी मधुर स्मृतियाँ अवय स्मरण रहती है। बाल्यकाल से ही संगीत की पृष्ठ भूमि में संचित लोरी गीत, पूजा, इबादत आदि की लयात्मक ध्वनि उसके विकास के साथ उससे जुड़ती जाती है और वह अनजाने में संगीत एवं साधना से जुड़ता चला जाता है। संगीत द्वारा भावनात्मक संबंध एवं विचारों के साथ उसके व्यक्तित्त्व के निर्माण का शुभारंभ हो जाता है। मनुष्य के दबे और विशुद्ध भाव की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति अश्रु है। इसलिए किसी भी मानव में रोने अथवा भावुक होने की प्रतिक्रिया को विशुद्ध एवं सहज माना जाता है। संगीत द्वारा जब मनुष्य के इस भाव को उद्वेलित किया जाता है तो एक विकसित और अनुभवी व्यक्ति भी किसी नवजात की तरह अपने सुख-दुःख, अनुभव और स्मृति की प्रतिक्रिया में रो देता है। यहाँ यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि संगीत पीछे छूट चुकी भौतिक पीड़ाओं को मानवीय वेदना में बदलकर, भाव को संतुष्टि एवं प्रकटिकरण का पथ प्रदान करता है।

संगीत और मनोविज्ञान के परस्पर संयोग के कई उदाहरण दिए जा सकते है। जैसे राग बागेश्री रात्रि में गाये जाने वाला राग है रात्रि से एकाकीपन, एकांत और सन्नाटे का बोध होता है। यह संवेदनाओं और स्म तियों के पुनर्जन्म का विशुद्ध प्रहर है। राग के कोमल गंधार और निषाद स्वर स्मृति और अन्य मार्मिक भाव को जन्म देने में सहायक होते है। इस राग के आधिकांश बंदिशों में विरह और पीड़ा के मनोभाव देखे जा सकते है। राग भैरवी प्रातः कालीन राग होने के बावजूद भी सार्वकालिक माना गया है। इसके प्रचलित स्वरूप में स्वरों का लगाव इस प्रकार निर्धारित किया गया है कि यह किसी भी प्रहर में गाये जाने पर अपनी संवेदना और मर्म की भूमि को नहीं छोड़ता सभी कोमल स्वर आदर, प्रेम, त्याग, विरह और श्रद्धा के भाव को उत्पन्न कर किसी भी मानव के मानस को सम्मोहित कर लेते है। संगीत के माध्यम से संगीतज्ञ और श्रोता कोमल स्वरों और भावों को अभिव्यक्त करने का मर्म मनोविज्ञान का ही सूचक हो। हम कह सकते है कि रागों के माध्यम से संवेदनशील मनोविज्ञान को उत्तेजित किया जा सकता है। संगीत ने सदैव ही मानव के मनोविज्ञान की खोज की। मानव द्वारा अपनाई गई कोई भी जीवन शैली संगीत से अछूता नहीं है। संगीत केवल सा, रे, ग, म, प, ध, नि जैसे स्वर या अक्षर ही नहीं बल्कि यह प्रत्येक मनुष्य के मनस उसके व्यक्तित्व एवं उसके विकास का प्रमाण भी है।

आधुनिक युग में मनोविज्ञान जीवन के हर क्षेत्र में सफलता के लिए अचूक माध्यम के रूप में प्रयुक्त होता जा रहा है। जीवन के सैद्धांतिक और प्रायोगिक पहलूओं को मनोविज्ञान पूरी तरह प्रभावित करता है। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर मेरा मानना है कि समस्त मानव जगत में मनोविज्ञान एक प्रतिबिंब के रुप में कार्य करता है। संगीत में मानव मन के समस्त भावों को अलग-अलग रस के माध्यम से प्रकट करने का मार्ग निश्चित है। हर बार संगीत ने मनोविज्ञान को कुरेदा है और उसके उत्तर में उत्पन्न हुए नए मनोविज्ञान ने फिर से संगीत के जिज्ञासा को स्वरों, रागों एवं ध्वनियों की नई खोजों एंव उसके विभिन्न क्षेत्रों में प्रयोग से शांत एवं सशक्त किया है।

KALBELIA- **The snake charmer's dance**

The Kalbelias, a prominent tribe of Rajasthan were known for their frequent movement from one place to another in ancient times. Their traditional occupation is catching snakes and trading snake venom. Hence, the dance movements and the costumes of their community bear a resemblance to that of the serpents.They are also known as Sapera, Jogira or Jogi. They trace their ancestry from Kanlipar, the 12th disciple of Guru Gorakhnath. The largest number of the population of Kalbelias is in Pali district, then Ajmer, Chittorgarh and Udaipur district. They live a nomadic life and belong to the scheduled tribe. ***This folk art is transmitted.*** There is no any organized training system or school, manuscripts, and written text to teach and learn Kalbelia songs and Kalbelia dance from generation to generation.

Traditionally, Kalbelia men carried cobras in cane baskets from door to door in villages while their women sang and danced and begged for alms. They revere the cobra and advocate non-killing of the reptile. In the villages, if a snake inadvertently entered a home, then a Kalbelia would be summoned to catch the serpent and to take it away without killing it. Kalbelias have traditionally been a fringe group in society living in spaces outside the village where they reside in makeshift camps called deras. The Kalbelias move their deras from one place to another in a circuitous route repeated over time. Over the generations, the Kalbelias acquired a unique understanding of the local flora and fauna, and are aware of herbal remedies for various diseases which is an alternative source of income for them.

The Kalbelia dance, performed to celebrate any joyful moment in the community, is an integral part of Kalbelia culture. Their dances and songs are a matter of pride and a marker of identity for the Kalbelias and they represent the creative adaptation of this community of

Asst. prof. Fashion Designing, BBK DAV College for women, Amritsar

snake charmers to changing socioeconomic conditions and their own role in rural Rajasthani society.

Since the enactment of the Wildlife Act of 1972, the Kalbelias have been pushed out of their traditional profession of snake handling. Today, performing arts are a major source of income for them and these have received widespread recognition within and outside India. However, performance opportunities are sporadic and of the community work in the fields, or graze cattle to sustain themselves.

DANCE ELEMENTS

Kalbelia dance has a traditional musical instrument which is Poongi also called a Been. Poongi is a kind of wood wind musical instrument used by Kalbelia tribe during catching snakes. Other traditional musical instruments used by Kalbelia tribe in Kalbelia dance are Dufli, Morchang, Dholak, Khanjari, and Khuralio. When these instruments play all together with poongi, they result into a sensuous and amazing music. The Kalbelia is almost exclusively performed on stage by females while the men play the instruments. There are a number of traditional Indian instruments used during the performance of the Kalbelia such as the *pakhwaja*, the *dholak*, *jhanjhar*, *sarangi* as well as the harmonium. However, the most characteristic instrument played during a performance of the Kalbelia has to be the *Pungi* which is played with no pause. This *been* or pungi is synonymous with snake charming in India and ties in perfectly with the heritage of the Kalbelia tribe.

KALBELIA PERFORMANCE

The Kalbelia is almost exclusively performed on stage by females while the men play the instruments. There are a number of traditional Indian instruments used during the performance of the Kalbelia such as the *pakhwaja*, the *dholak*, *jhanjhar*, *sarangi* as well as the harmonium. However, the most characteristic instrument played during a performance of the Kalbelia has to be the *Pungi*.

The pungi, or *been*, is a wooden wind instrument that is played with no pauses. The *been* is synonymous with snake charming in India and ties in perfectly with the heritage of the Kalbelia tribe.

During the performance, the women sway, twirl and gyrate to the music and

use acrobatic dance steps which showcase the dancers' flexibility and litheness. As the performance goes on, the tempo of the Kalbelia dance increases and so does the pace of the dance steps. Due to the demanding nature of the dance, the performance is usually carried out in pairs with at least two pairs who swapstage-presence seamlessly. This lets the one half of the group catch their breath while at the same time not letting the pace of the dance slow down.

The songs are based on stories taken from folklore and mythology and special dances are performed during *Holi*. The Kalbelia have a reputation for composing lyrics spontaneously and improvising songs during performances. These songs and dances are part of an oral tradition that is handed down generations and for which there are neither texts nor training manuals. In 2010, the Kalbelia folk songs and dances of *Rajasthan* were declared a part of its *Intangible Heritage List* by the United Nations.

COSTUMES OF KALBELIA

***The Kalbelia dancers wear traditional dresses of their tribe when they are performing. The performers wear an* Angrakhi *on their upper body whose sleeves can either be half length or full length while their head is covered by an* Odhani.**

They also wear a long skirt on their lower body which is called a *Lehenga* or a *Ghagra* which has a wide circumference. The whole dress is essentially black in colour with red decorative laces. It also employs silver thread that is sewed in an assortment of patterns on the black dress. This makes the dress resemble a black snake that has white spots or stripes more closely. It also features a lot of colorful patters and designs along with mirror work that help the dancer attract the attention of the audience.

Kalbelia dancers prefer to wear **traditional jewelry** during their performances. They wear beads and jewellery around their neck and their head in the form of elaborate necklaces and *Maang-tikka*. They also wear bangles and armlets. These can either be worn till the elbow or all the way up the arm. If the sleeve of the Angrakhi is full length, bangles need not be worn by the Kalbelia performers.

POSITION AT PRESENT

The Kalbelia tribe has been forced to stop their traditional profession of snake handling ever since the enactment of the Wildlife Act of 1972. As a result, performance art has become a major source of income for the once nomadic

tribe. The beauty and skill of the Kalbelia dancers have received recognition not just in India, but from the world over. However, the Kalbelia dance is under threat as performance opportunities are quite sporadic and most of the people from the tribe have moved on to working in the fields or grazing cattle as a way to earn income. There is also no organized training system, schools, manuscripts or text that help teach Kalbelia song and dance.

Over the last decade or so, governmental agencies have been making a concerted effort towards preserving this dance form by offering performance opportunities to them in fairs and festivals of national repute.

These fairs attract visitors from across the globe, giving Kalbelia performers better exposure.

FACTS ABOUT THE DANCE

- The dresses worn by the dancers are made by the Kalbelia women themselves.
- The Kalbelia dance is not taught to children. Rather, they are expected to learn it from watching the elders perform it at home.
- Kalbelia dance and songs are a part of UNESCO's representative list of Intangible Cultural Heritage of Humanity.
- The Kalbelia believe that playing the *Been* will not make the snake bite them. They also believe that consuming a *Surma* made from the snake's venom will ensure that they do not lose their eyesight.
- Masters of Kalbelia are able to generate lyrics spontaneously and can improvise dance routines mid-performance.

REFERENCES

- http://en.wikipedia.org/wiki/kalbelia
- http://www.unesco.org/archives/multimedia/index.php?s=films_details&pg=33&id=1701#.vfeh3_mswsi

Health Benefits of yoga with music

Mrs. Ravneet Kapoor

Abstract

Thousands of years ago yoga originated in India, and in present day and age, an alarming awareness was observed in health and natural remedies among people by yoga and pranayama which has been proven an effective method for improving health in addition to prevention and management of diseases. With increasing scientific research in yoga, its therapeutic aspects are also being explored. Yoga is reported to reduce stress and anxiety and even, now-a-days, several reports suggested yoga is beneficial for physical health of cancer patients. Such global recognition of yoga also testifies to India's growing cultural influence.The endless list of health benefits gained from a regular practice of yoga is astonishing. From lowering LDL (bad) cholesterol and boosting HDL (good) cholesterol, decreasing the risk of diabetes, encouraging weight loss, improving immunity, lowering blood pressure and the risk of a heart attack, no one should really go another day without yoga.

Music obviously helps to attain Yoga. Music has an undividable link with it. Thus, it has a basic quality to bond with everything that is divine. So considering far-reaching divinity in Music, it is evident that Yoga also connects with it. All the religious doctrines also accepted music to be their core part. Music without lyrics is often important to maintain an insular state during the practice, lyrical music can create a deep sense of community, of reflection, or of awareness, depending on the postures.

Introduction

The word yoga means 'unity' or 'oneness' and is derived from the Sanskrit word 'yuj' which means 'to join'. Yoga is to purify, control (nirodha) and slowdown (praçamana) the mind and its modifications (våttis) by skill (kausçala) and wisdom (prajnänaà).

Yoga was originated in India during ancient time by the yogis. Yoga word is originated from the Sanskrit language and has two meanings, one is union and another one is discipline. It is a spiritual practice used to meditate in the early morning to balance body and mind as well as remains close to the nature. It was practiced earlier by the people of religions like Hindu, Buddha and Jain. It is amazing type of exercise which makes life better by controlling the body and mind. It is like a medicine which treats

Asst. Prof. (B.D. Fashion Designing), B.B.K.D.A.V. College For Women, Amritsar

various diseases gradually by regularizing the functioning of body organs.

It enhances the inner and outer body and mind strength by connecting both to the nature. It is not a physical practice only as it makes a human able to get control over mental, emotional, and spiritual thoughts. It can be practiced by the people at any age during childhood, teenage, adult or old age.

Music proves that we are more than physical beings; music is evidence of our divinity. Historically, music arose from devotional practices in cultures throughout the world. The word 'Aum' or Om, has been chanted and shared for the past 4000 years, is believed to be the first sound, the manifested sound of the divine, which can be found in all of creation. Music is esteemed as divine in cultures throughout the world, from India, to Greece, to Africa.

Music and yoga both provide healing and therapy for undefined and most often unseen ailments. So it stands to reason that bringing these two therapies together has the potential for creating a pretty powerful experience.

Practicing yoga while listening to music can be an exhilarating experience. Yoga retailers offer hundreds of collections of music intended for yoga, from pan flute ballads to nature sounds to hip-hop and rock. The intent of introducing music during yoga is to assist practitioners in their poses, calm them and enhance their emotional states.

Benefits of yoga

1. Improves flexibility and builds muscle strength: Improved flexibility is one of the first and most obvious benefits of yoga. During the first attempt, an individual probably won't be able to touch his/her toes, never mind do a backbend. Strong muscles do more than look good. They also protect us from conditions like arthritis and back pain, and help prevent falls in elderly people.

2. Prevents cartilage and joint breakdown: While practicing yoga, it takes your joints through their full range of motion.

This can help prevent degenerative arthritis or mitigate disability by "squeezing and soaking" areas of cartilage that normally aren't used.

3. Betters your bone health: Weight-bearing exercise strengthens bones and helps ward off osteoporosis. Many postures in yoga require that one lift his/her own weight. Yoga's ability to lower levels of the stress hormone cortisol may help keep calcium in the bones.

6. Increases blood flow: Yoga gets one's blood flowing. More specifically, the relaxation exercises you learn in yoga can help your circulation, especially in your hands and feet. Yoga also boosts levels of hemoglobin and red blood cells, this can lead to a decrease in heart attacks and strokes since blood clots are often the cause of these killers.

7. Boosts immunity: When you contract and stretch muscles, move organs around, and come in and out of yoga postures, you increase the drainage of lymph (a viscous fluid rich in immune cells). This helps the lymphatic system fight infection, destroy cancerous cells, and dispose of the toxic waste products of cellular functioning.

8. Drops your blood pressure: If you've got high blood pressure, you might benefit from yoga, with the effects of Savasana (Corpse Pose) with simply lying on a couch.

9. Founds a healthy lifestyle: Move

more, eat less—that's the adage of many a dieter. Yoga can help on both fronts. A regular practice gets you moving and burns calories, and the spiritual and emotional dimensions of your practice may encourage you to address any eating and weight problems on a deeper level.

10. Boosts your immune system functionality: Asana and pranayama probably improve immune function, but, so far, meditation has the strongest scientific support in this area.

11. Gives your lungs room to breathe: Yoga also promotes breathing through the nose, which filters the air, warms it (cold, dry air is more likely to trigger an asthma attack in people who are sensitive), and humidifies it, removing pollen and dirt and other things you'd rather not take into your lungs.

12. Prevents digestive problems: Yoga, like any physical exercise, can ease constipation—and theoretically lower the risk of colon cancer—because moving the body facilitates more rapid transport of food and waste products through the bowels.

Benefits of Music during yoga

Music has always had a strong effect on the emotions, mental states and memory. When used during yoga practice, music can both inspire the individual while strengthening social bonds with each other. Soothing, relaxing music can help a yoga by creating a calm and peaceful environment and serving as a constant background noise that keeps one focused on their stretching and meditation exercises. More upbeat music is often used in vigorous yoga styles such as power yoga or Ashtanga Vinyasa to sustain a more energetic pace.

1. Reduces Stress: One benefit of listening to music during yoga is a reduction in the levels of stress and anxiety. Stress is one of the most common issues in today's world. When you listen to pleasant and soft music during yoga, you will feel calmer and eliminate stress from your life. There are a number of studies that show a whole lot of benefits among those listening to music while doing yoga after a surgery.

2. Deep Meditation: If you like to go deeper into meditation, then you should include some lovely and soft music in the background. This will improve your cognitive abilities and help you meditate better. It is also said that those who meditate while listening to music can find inner peace and happiness within themselves.

3. Balances Your Emotions: Maintaining an emotional balance is very important. You don't know which problem would strike you on your face and when. A balanced mind doesn't dread changing situations. It rather embraces them. Listening to music during yoga can help you balance your emotions. It has often been said that people who meditate while listening to music on a regular basis can balance all areas of their lives. They are better in dealing with emotions.

5. Inspires You: When you listen to music during yoga, you feel inspired. This brings about a good feeling from within, and you can relax and enjoy yourself. You also will feel great about yourself. This is a great source of inspiration for someone who has lost hope in life. You could also recommend it to someone who is struggling with hopelessness and depression.

6. Helps You Sleep Better: Sleep is very important for a healthy and balanced life. Adequate and quality sleep also

enables you to perform at your best at your workplace. Many a time, due to the stress and monotony of our lives, we can't get a good night's sleep. Meditating while listening to some lovely music can help you reduce your stress levels. You will become a much calmer person and will sleep better.

With the never ending yoga benefits for health it is also important to know various yoga asanas that are truly helpful in today's world of hypertension.

Yoga promotes physical, physiological, mental, and spiritual health. It improves an individual's cardiovascular system, immune system, and quality and length of sleep. It increases a practitioner's positive affect and control over negative thoughts, as well as decreases blood pressure, depression, anxiety, and stress.

There are variuos types of yoga asanas that helps reducing heath problems. Few of them are:

Slow Neck Stretches Yoga Asana : It is recommend to perform few repetitions of this yogic slow neck stretches as it eases the neck tension and strain.

Tadasana Yoga (Mountain Pose) : Practicing this yoga asana regularly every morning gives a good massage to our hands, back, spine and the whole body. This is the most recommended asana for increasing height as well.

Uttanasana (Standing Forward Fold Pose) : Uttanasana is a forward bending pose which relaxes us from stress and anxiety. And with the arm bind, this standing forward bend variation provides a deep shoulder stretch.

Trikonasana Yoga (Triangle Pose) : This is a good yoga exercise for pregnant women. It helps in reducing blood pressure, stress and anxiety and also improves the functions of the blood through the entire body.

Dhanurasana Yoga (Bow Pose) : Dhanurasana is very effective in weight loss program. This yoga pose helps in reducing the belly fat very easily. It strengthens the ankles, thighs, groins, chest and abdominal organs and spinal cord. This yoga posture improves the functions of kidney, pancreas, liver, small and big intestine.

Surya Namaskara (Sun Salutation) : A full round of Surya namaskara is considered to be two sets of the twelve asana, with a change in the second set where the opposing leg is moved first. It improves flexibility, strength, balance, reduces stress and anxiety, reduces symptoms of lower back pain, shortens labor and improves birth outcomes, and reduces sleep disturbances and hypertension.

Kapalbhati Yoga Asana : Kapalbhati Pranayama is the most recommended breathing yoga exercise which cures your stomach disorder completely and loses weight. Practicing 5 minutes Kapalbhati Pranayama regularly removes the toxins and increases metabolism. It also cures constipation, acidity, diabetes, Asthma and all kinds of Respiratory troubles, sinus and even hair loss. It is very effective in weight loss

(mainly belly fats).

Sirsasana (Headstand Pose) : With regular practice of this asana it cures insomnia (sleeping disorder), spine problems and also improves concentration powers & mental balance.

Halasana Yoga: Halasana is also known as Plough pose which strengthens your back muscles and gives flexibility. It cures indigestion and constipation as well as reduces stress.

Hatha Yoga: According to the principal texts of Hatha yoga, the human body is made up of networks of subtle channels called nadis. Hatha yoga helps in purification and balancing of the nadis through the process of asana, pranayama and mudra. This yoga eliminate toxins and build immunity.

Iyengar Yoga: The aim of this yoga is to unite mind, body and spirit with the help of a system of asanas.

This yoga helps reducing high blood pressure, cure depression, cure chronic back and neck pain, cure Immunodeficiency. Helps improve stamina, flexibility, concentration and balance.

There are endless physical, mental, emotional and energetic benefits to having a consistent yoga practice.

Life has become extremely busy. Even though yoga, bids everyone to slow down, work and school schedules, housework, and family responsibilities simply don't stop. Fitting in yoga is often a trade-off. It might mean giving up TV (which isn't really a bad thing), swapping an hour's sleep for some stretches and meditation.

Conclusion

Listening to music and practicing yoga are activities that despite their differences and origins are inherently similar. They make us feel good and enhance our wellbeing. They both speak the universal language of love. Music is as old as the human race and has remained a constant through the evolution of culture within our species. And just like yoga, studies have shown that music has physiological benefits as well. Music can decrease anxiety and lower cortisol more effectively in patients about to undergo surgery than those who took anti-anxiety drugs and they both together make a remarkable miracle.

References

S. A. Saeed, D. J. Antonacci, and R. M. Bloch, "Exercise, yoga, and meditation for depressive and anxiety disorders," American Family Physician, vol. 81, no. 8, pp. 981–987, 2010.

A. Büssing, T. Ostermann, R. Lüdtke, and A. Michalsen, "Effects of yoga interventions on pain and pain-associated disability: a meta-analysis," Journal of Pain, vol. 13, no. 1, pp. 1–9, 2012.

http://www.medinfi.com

http://www.introductiontoyoga.com/

http://www.yogamag.net/

MUSIC and WELLNESS

Niti Anand

ABSTRACT

The beauty of music is that it can be appreciated by all. Music appeals to all including a child in a cradle. It is but natural for the living things to behave in such a way because the universe was originally created through music. Emotions play vital role in our well-being. We express our different emotions in different manners. If somebody is in joyful mood he feels like singing, dancing and laughing. Similarly, if someone is miserable he feels the urge to cry. When these emotions are presented through music it becomes an art. We know that there is biological clock in our body. If we keep in harmony with the rhythm of the nature around us we remain in good health otherwise we fall sick.

In the present society human intellect has grown to a great height and great technological advancement has been achieved. But to the surprise of many people the human and moral value have started deteriorating. To achieve this goal of our existence we need to become masters of our emotions. The ancient spiritual masters of India have unraveled the key to gain mastery over emotions through YOGA. Yoga is an ancient discipline that aims at developing integrated personality. It is the biggest need for personality development of human beings and is the key for sustaining health, fitness and personality and provides the basic needs to a common man to lead a decent life. Meditation techniques always use chants or music.

In yoga, music aims at bringing good health and equanimity of mind at all the times under various pressures and tensions.

INTRODUCTION

In the modern materialistic society where everybody is running behind matter for their enjoyment and where the mind is neglected, the emotions are not properly channelized. So the modern people are becoming more and more emotionally unstable which are leading them to diseases and driving the society to drug and gun culture. Thus the time has come for all of us to look back at the old wisdom of the Sages to channelize our emotions and become better Human beings with the powerful role of YOGA. Yoga has its origin thousands of years ago in India. It has originated from a universal desire towards attaining happiness and getting rid of sufferings. According to yogic lore, Shiva is

Asst Prof. BD (Fashion Design), BBK DAV College for Women, Amritsar

considered as the founder of Yoga. The word 'Yoga' is derived from Sanskrit root *yuj* which means 'join' or 'unite'. This may be taken as the union of body, mind and soul, and is used in the literature both as an end as well as means.

Yoga for a common person contains the practices of *yama*, *niyama*, *asana*, *pranayama*, *pratyahara*, *kriya, mudra*, *bandha* and meditation which are helpful to keep one physically fit, mentally alert and emotionally balanced. This ultimately prepares ground for the spiritual development of an individual.

Music is very good media to calm down the mind, and concentrates to a particular point. In yoga, music plays a major role to reduce unwanted thoughts, to get good concentration in practice.

IMPORTANCE of YOGA and MUSIC

Music is a powerful influence on an individual's life. It brings joy, healing, helps us make new friends; have fun with old friends, and a great promoter of wellness. Music leads to a healthy life. By integrating music with ancient practices such as mantra and pranayama helps to live a happier, healthier life.

Good Health is the right of every human being. But this right depends on individual, social and environmental factors. Along with social or environmental factors to a large extent, we can develop a better immune system and a better perception of oneself so that other conditions do not affect us adversely and we can achieve good health. Health is a positive concept. Positive health does not mean merely freedom from disease, but, it also include a jubilant and energetic feeling of well-being with an amount of general resistance and capacity to easily cultivate immunity against specific offending agents. There are many modern and indigenous methods and disciplines that can help us to successfully fight with diseases.

Yoga can be adopted as lifestyle for promoting our physical and mental health. Yoga, if introduced at the school level would help to inculcate healthy habits and healthy lifestyle to achieve good health. The aim of yoga thus, at the school level, is to encourage a positive and healthy lifestyle for physical, mental and emotional health of children. Yoga helps in the development of strength, stamina, endurance and high energy at physical level. It also empowers oneself with increased concentration, calm, peace and contentment at mental level leading to inner and outer harmony.

Systematic reference of yoga is found in Patanjali's *Yogadarshna*. Maharishi Patanjali systematized the Yogic practices. After Patanjali, many sages and yogis contributed to its development and as a result, yoga has now spread all over the World.

YOGA and PERSONALITY DEVELOPMENT

Yogic practices are found effective for development of all dimensions of personality. Many thousands of years ago in India, Rishis (wise men and saints) explored nature and the cosmos in their meditations. MEDITATION is a practice which helps in concentration of the body and mind. In meditation, concentration is focused for a long time on a single object like tip of the nose, space between eyebrows, etc. It develops a sense of well-being and improves memory and decision making power in the person.

Music is a useful tool in meditation,

as it helps to clear the mind and stay in the moment. Listening to pleasant and soft music during meditation eliminates stress from life and one feels calmer.

Yoga and Physical Dimension of Personality:

Physical dimension is related to our body. It means that all organs and systems of our body should be properly developed and functions. It implies a healthy body without any disease. Yogic practices like *Asana*, *pranayama,* and *bandha* play a beneficial role in physical development of children. There is a series of *asanas* and *pranayamas* which help to improve the functioning of the body. Breathing is so simple and so obvious we often take it for granted; ignoring the power it has to affect our body and mind. With each inhalation we bring oxygen into the body and spark the transformation of nutrients into fuel. Each exhalation purges the body of carbon dioxide, a toxin waste. Präëäyäma is a science to gain mastery over breath.

Yoga and Emotional Dimension of Personality:

Listening to music while meditating can help in balancing one's emotions. Yogic practices are effective for development of emotional dimension related to our feelings, attitudes and emotions.

There are two kinds of emotions– positive and negative. For example love, kindness is positive emotions, while anger and fear (exam phobia) are negative emotions.

Similarly, our feelings and attitudes may be positive and negative. For emotional development, positive feelings, attitudes and emotions should be developed and negative ones should be controlled, as the negative attitudes and emotions work as a mental block for the development of personality. Yoga plays a crucial role in development of positive emotions. It brings emotional stability. It helps to control negative emotions.

Yoga and Intellectual Dimension of Personality:

Intellectual development is related to the development of our mental abilities and processes such as critical thinking, memory, perception, decision making, imagination, creativity, etc. Development of this dimension is very important as it enables us to learn new things and acquire knowledge and skills.

Yogic practices such as *asana*, *pranayama, dharana, dhyana* (meditation) help to develop concentration, memory and thereby help in intellectual development.

Yoga and Social Dimension of Personality:

Primary socialization, probably the most important aspect of the personality development takes place during infancy, usually within the family. By responding to the approval and disapproval of parents and grandparents and imitating their examples, the child learns the language and many of the basic behavior patterns of her/his society. The process of socialization is not limited to childhood, but continues throughout life and teaches the growing child and adolescent about the norms and rules of the society in which she/he lives. Some key elements of this process include

respect for others, listening carefully to other persons, being interested in them, and voicing your thoughts and feelings politely, honestly and clearly so that you can be easily heard and understood. Principles of yama include these key elements and are very important as these helps us in the betterment of our relationships with our friends, parents, teachers and others.

Yoga and Spiritual Dimension of Personality:

This dimension is related to the development of values. It is also concerned with self-actualization which is related to recognizing one's potential and developing them to the maximum. Proper development of this dimension helps the personality.

ROLE of MUSIC in YOGA

Soft music will improve cognitive abilities and helps to do yoga asanas better. In yoga listening to music helps to find inner peace and happiness within ourselves. Yoga affects every cell of the body. It brings about better neuro-effect or communication, improves strength of the body, increases the optimum functioning of all organ-systems, increases resistance against stress and diseases and brings tranquility, balance; positive attitude and equanimity in the practitioner which makes him lead a purposeful and healthier life. Yoga is mind-body technique which involves relaxation, meditation and a set of physical exercises performed in sync with breathing. Being holistic, it is the best means for achieving physical, mental, social and spiritual well being of the practitioners. Yoga helps in developing our total personality in an integrated and holistic manner. Yoga is widely practiced and globally accepted.

Hence, it can be very well integrated as a health promoting tool in our society. To live in harmony with oneself and the environment is the wish of every human. However, in modern times greater physical and emotional demands are constantly placed upon many areas of life. The result: more and more people suffer from physical and mental tension such as stress, anxiety, insomnia, and there is an imbalance in physical activity and proper exercise. This is why methods and techniques for the attainment and improvement of health, as well as physical, mental and spiritual harmony, are of great importance.

Music has become a way of life for most people. Indeed it affects one's emotion, mood, and mental perspective. Yoga experts have utilized this medium in their practice. Music plays an integral role to the entire experience. It serves as a medium that communicates thoughts and ideas. Music helps to stay calm not just on physical body but it also nourishes the soul.

Music in Yoga exercises have a holistic effect and bring body, mind, consciousness and soul into balance. In this way Yoga assists us in coping with everyday demands, problems and worries. Yoga helps to develop a greater understanding of our self, the purpose of life and our relationship to God.

CONCLUSION

Music heightens the consciousness of human being which is pre-requisite for practicing any kind of yoga.

In yoga music is one of the most popularly used types of ambient music and it is great way to relax your body,

mind, and soul. From these experiences and insights a far-reaching and comprehensive system known as Yoga originated and gave us valuable, practical instructions for the body, breath, concentration, relaxation and meditation. Importance of yoga is to develop an understanding of yogic practices and apply this understanding accordingly in one's life and living, develop a healthy habit, lifestyle and humane values in children, and to develop physical, emotional and mental health through yogic activities. The result is enfoldment of a unique spiritual personality that is a blessing for the whole humanity and offers an aid to help one's self.

As the beautiful sound of instruments help the mind and soul to relax and concentrate on a single thought.

REFERENCES

· www.Yoga of mind .com
· www.library of yoga.com
· Develop your personality by Art of Living
· https://caloriebee.com

Inter Relationship: Music & Mathematics

Dr. Gaveesh

Music is ingrained in each and every aspect of human life. Education is also no exception to this fact. On one hand music is an integral part of formal education all around the world whereas on the other hand it plays an important role in the understanding of other subjects as well. Although almost all subjects can find a relation with music, but there are two specific subjects that are inseparable from music. These two subjects are mathematics and physics. In this Paper light has been shed on these interrelations by taking into account their historical background. It is also emphasized that how the basic rules of mathematics and physics help a musician to understand the nuances of music easily and in an effective manner. Research has also proven that those students undergoing musical training tend to do better in subjects related to mathematics and physics.

Inter Relationship: Music & Mathematics

The connection between music and mathematics goes back to the days of the ancient Greek philosophers, especially Pluto and Aristotle, who recognized the similarity and greatly researched the bond between the genres. In fact, they were so convinced of music being a genre of mathematics that they included music among the "Quadrivium" of other mathematical arts like Geometry, Arithmetic and Astronomy.[1] Beyond the basic uses of mathematics in music theory and notation, music has also been the source of research in many areas of mathematics such as abstract algebra, set theory and number theory.[2] Use of music is prevalent almost in every aspect of music. The Pythagoreans (in particular Philolaus and Archytas) of ancient Greece were the first researchers known to have investigated the expression of musical scales in terms of numerical ratios. [3] Microtones (Shrutis) are also placed in octave (Saptak) by Indian, Persian and Greek Musicians according to mathematical calculations. Notes (Swara) in Indian music were also fixed according to length of the string of Veena by Indian scholars. Indian Musicologists used a mathematical system called 'Sarna Paddhtti' to prove the existence of 22 Shrutis in an Octave (Saptak). Base of Gram and Murchhna is also mathematics. 7 Murchhnas in a Gram were calculated using mathematics. Two very important concepts of Indian Music i.e. 'Raga Vargikaran' (Classification of Ragas) & 'Ragon Ka Samay Siddhant'

Freelance Artist & Scholar

(Time Theory of Ragas) are totally dependent upon mathematics. Ragas are classified into Sampurna, Shadava & Audava Jatis according to 7,6 & 5 Notes (Swaras) coming in that particular Raga respectively. According to 12-12 hours in Day-Night and Eight Prehars in 24 Hours, Raga according to Notes { {Re, Dha Komal}, {Re, Dha Shudha}, {Ga, Ni Komal}, {Ga, Ni Shudha}, {Ma Shudha}, {Ma Tivra} etc are classified in Morning Ragas, Afternoon Ragas, Evening Ragas, Sandhi Parkash Ragas.

Concept of Laya and Tala in music is totally based upon principles of mathematics. Concept of Tali-Khali, Vibhaga, Matras of Tala etc are mathematical. Basis of Layakaries is again mathematical. Layakaries like Dugun, Tigun, Chaugun, Aad, Kuyaad, Biyaad etc are all mathematical calculations. This is only due to mathematics that musicians are able to make thousands of Qayedas and Paltas from one Tala. Tiyahi and Tode all are based on mathematical calculations. Notation system used to write Hindustani Classical Music is again based on mathematics. Tan patterns are also made according to Matras of Tala & Sam (First Matra of Tala) by mathematical calculations. Lot of concepts other like Vadi-Samvadi, Swar-Samvad, Harmony, Chord system has their base in Mathematics only. In this way we find music and mathematics are strongly inter-related to each other. Famous singer and musician Shankar Mahadevan told that he started learning Harmonium and Veena from the age of five which further helped him getting more scores in Mathematics. [4] Anita Cooper, faculty member at Peabody Prep, says music enhances children's cognitive ability." Composing music is like problem solving-you have to put text and rhythm together," she says.

"Musical rhythms are mathematical equations, like 4/4 or 2/4 time. You use addition and subtraction skills: How many more beats do you need, How many more ways can we divide it. [5] In this way music helps a student score well in mathematics. The link between the physical practice of music and strong mathematical abilities are demonstrated in studies that show that kids who play a musical instrument can perform more complex arithmetical operations than those who do not play an instrument. The slow work of practice, the attention to detail and the discipline it takes to learn an instrument are also excellent preparation for the practice involved in building strong math skills. Therefore a student must take some musical instrument while schooling. In her 2006 article published in the Educational Psychologist, she explains that "young children provided with instrumental instruction score significantly higher on tasks measuring spatial-temporal cognition, hand-eye coordination and arithmetic." Part of this is due to the amount of overlap between music skills and math skills. For example, Rauscher says the part-whole concept that is necessary for understanding fractions, decimals and per cents is highly relevant in understanding rhythm.

"A literate musician is required to continually mentally subdivide beat to arrive at the correct interpretation of rhythmic notation," she writes. "The context has changed, but the structure of the problem is essentially the same as any part-whole problem posed mathematically." [6] Hence we see Music and Mathematics complement each other.

Parents and teachers must motivate students to take vocal or at least one musical instrument while schooling from very early age, whereas musicians must learn basics of mathematics if they want to understand music well.

References:

1. http://www.shankarmahadevanacademy.com/blog/The-Connection-between-Music-and-Mathematics/
2. http://www.vancouversun.com/Entertainment/interesting+connection+between+math+music/1473881/story.html
3. https://en.wikipedia.org/wiki/Music_and_mathematics
4. http://www.shankarmahadevanacademy.com/blog/The-Connection-between-Music-and-Mathematics/
5. Ibid
6. http://www.vancouversun.com/Entertainment/interesting+connection+between+math+music/1473881/story.html

Need and importance Music Education: An overview

Sudha Sharma

1. Introduction

Music is an art form which contains unique symbol system and literature. It has an exceptionally good existence in interdisciplinary forms such as opera, musical theatre and film and simultaneously it stimulates the feature of social or emotional development that is unparalleled to other art forms. Thus, music constitutes a medium for learning that provides emphasis on fundamental learning processes, concepts, and representations for other subjects with unique points. Research reported in popular media provides evidences which connect music to various aspects of human potential. Sharon Begley (writing for the Science and Technology Section of *Newsweek*, July 24, 2000) summarizes that studies on music and the brain provide idea of new research in learning because, music in humans is universal, it matters in general education, it is a powerful window onto the working of the brain and it may promote connectedness in the brain. Clearly music symbolizes a process that yields models of learning which is particularly generative in nature as described by some of the researchers of the last century. It has been believed that strong presence of the arts, and music in particular in education may impact all children's lives positively in the areas of cognitive, physical, social and emotional development. Research reported in *Champions of Change: The Impact of the Arts on Learning* (published in 1999 by the Arts Education Partnership and the President's Committee on the Arts and the Humanities) says that if music programs are linked with successful art-in education practices they may produce positive social impact on the school community, can be correlated positively with success in the academics and it may become most effective if they involve partnership with other cultural programs and resources.

Learning through music may succeed in transforming schools because of the uniqueness and wide range of experiences musical studies involves contributing to entire school community like other art forms which includes connecting the learning experience to the world of "real work", enabling young people to have direct involvement with the arts and artists, requiring new forms of professional development for teachers, providing learning opportunities for the adults in the lives of young people and engaging community leaders and resources.

Lecturer in Music(Instrumental), S.R. Govt. College, Amritsar

2. Role of music education

Music education plays important role in student's life by equipping them with the (a) foundational abilities to learn, (b) generate capabilities to achieve in other core academic subjects, and (c) develops the skills and knowledge essential for entire life journey and success. These three sections could be discussed in detail for explaining the major role of musical education in student's life. Musical education prepares the student for learning ability which may includes preparing the brain for achievements, developing superior working memory, enhancing fine motor and better thinking skills. For exercising the brain to solve complex math processes music may play vital role since the same parts of the brain used in processing math are strengthened through practice in music and it has been proved that problem solving ability of students studied music is larger [1]. Ability to mentally grasp, manage and manipulate information in order to complete critical tasks is the characteristic of working memory. It could be said clearly that musicians have superior working memory compared to non-musicians. This ability is due to their better sustainability of mental control during memory and recall tasks due to their long term musical training [2, 3]. Thinking skills which is an ability to apply knowledge and visualize solutions are more in students who take lessons on keyboard and these skills improve with time on continuous musical training [4]. Motor function could be suggested as an ability to use small, acute muscle movements to write, use a computer, and perform other physical activities which are essential for classroom learning. Music instruction can develop the parts of the brain associated with sensory and motor function and the children shows better motor function than non-musically trained children [5].

Music education facilitates student academic achievement by improving retention of verbal information, advance maths achievements, boosting reading and speaking English language skills. Musical training makes development in the region of the brain responsible for verbal memory *i.e.* actually the recall and retention of spoken words which in turn serves as a foundation for holding information in all academic subjects [6]. Music education can help students to outperform their non-music peers in math assignments and this advantage increases over time. These distinct characters hold true regardless of socio-economic status and race/ethnicity [7]. Students involved in instrumental music can perform better in algebra, which could be proved as gateway for later achievement [1]. Students perform excellently good in writing, reading and responding, and proofreading if they haves excess to musical education and they can surpass non-music students [7].

Music education develops the creative capacities for lifelong success as it can sharpens the student attentiveness, strengthens perseverance, generate creativity, better study habits and self-esteem. Paying attention such as visual focus, active listening and staying on task are essential features for performing in school. Attentiveness is an essential characteristic of commitment, a skill required for success in school and the workforce. This process begins from early development in life and it continues throughout the adolescence and strengthens [8]. Perseverance is the talent

of continuing towards a goal while overcoming the obstacles present on the path of success. This ability could be developed and strengthened with music education. Motivation, commitment and persistence are some of the traits of creative person which can be taken as foundation of perseverance [9]. For employment, creativity is identified as one of the top skills critical for success in workforce [10]. Music education play role in developing originality which is a key component of creativity and innovation [11]. Students taking musical education felt more prepared for challenges and success in college than non-music students. These practices are typical of music students and may be taken forward to other academic areas and social/ emotional aspects of life, which results in self-esteem and success [12].

3. Need of music education

Music can be made as a means through which other goals could be attained.

Koopman [13] thinks that music has an intrinsic value which should not be justified with beneficial extra-musical effects of making music. However, Elliot [14] calls the music education as aesthetic education which has main aim of considering aesthetic objects called musical works in concept from their contexts of use and production. Following this philosophy musical education may be said to have goal of teaching children to listen to music. Another reason for learning music could be because musical performing to all children can be a form of thinking and valuable learning. Identifying musical education as necessity was also recognised by Pitts [15] who pointed out three arguments in the favour of musical education. Treating music as a way of learning to know the cultural background of child, as a good way of spending your free time and taking it as a leisure and lastly as a catalyst for emotional and personal development were the three arguments put forward. Fourth argument put forward by Koopman [13] was that music was meant to strengthen people's belief and devotion. Leonhard and House [16] suggested some reasons for teaching musical education which includes advance students' health, to develop social life, better home life or to develop good citizenship. Music is treated as source of joy and happiness and it provides self-fulfilment to humans [13]. Alperson [17] suggested that artistic experiences can assist humans in regaining equilibrium which is valuable. Music education is also important for cognitive ability and socio-emotional development and self-esteem among others. Therefore now it has been clear that music education has several reasons to be included in curriculum. The critical reasons among them are the likelihood of self-fulfilment and personal growth and hence happiness and joy by constructing music.

4. Future Perspectives of Music education in Society

It can be suggested that school music education programs will make their way towards success in future only if teachers plays important role in emphasising creating partnerships between school music and community music of various kinds. Culturally responsive teaching, socio-cultural learning theory, pragmatism and critical pedagogy are some of the other theoretical and philosophical perspectives of future.

5. References

1. Helmrich, B. H. (2010). Window of opportunity? Adolescence, music, and algebra. *Journal of Adolescent Research*, *25*(4), 557-577.
2. Berti, S., Münzer, S., Schröger, E., & Pechmann, T. (2006). Different interference effects in musicians and a control group. *Experimental Psychology*, *53*(2), 111-116.
3. Pallesen, K. J., Brattico, E., Bailey, C. J., Korvenoja, A., Koivisto, J., Gjedde, A., & Carlson, S. (2010). Cognitive control in auditory working memory is enhanced in musicians. *PloS one*, *5*(6), e11120.
4. Rauscher, F. H., & Zupan, M. A. (2000). Classroom keyboard instruction improves kindergarten children's spatial-temporal performance: A field experiment. *Early Childhood Research Quarterly*, *15*(2), 215-228.
5. Hyde, K. L., Lerch, J., Norton, A., Forgeard, M., Winner, E., Evans, A. C., & Schlaug, G. (2009). Musical training shapes structural brain development. *The Journal of Neuroscience*, *29*(10), 3019-3025.
6. Ho, Y. C., Cheung, M. C., & Chan, A. S. (2003). Music training improves verbal but not visual memory: cross-sectional and longitudinal explorations in children. *Neuropsychology*, *17*(3), 439.
7. Baker Jr, R. A. (2011). The Relationship between Music and Visual Arts Formal Study and Academic Achievement on the Eighth-Grade Louisiana Educational Assessment Program (LEAP) Test (Doctoral dissertation, University of New Orleans).
8. Neville, H., Andersson, A., Bagdade, O., Bell, T., Currin, J., Fanning, J., et al. (2008). Effects of music training on brain and cognitive development in underprivileged 3-to 5-year-olds, preliminary results. *In* C. Asbury & B. Rich (Eds.), *Learning, Arts, and the Brain: The Dana Consortium Report on Arts and Cognition* (pp. 105-116). New York, NY: Dana Press.
9. Scott, L. (1992). Attention and perseverance behaviours of preschool children enrolled in Suzuki violin lessons and other activities. *Journal of Research in Music Education*, *40*(3), 225-235.
10. Lichtenberg, J., Woock, C., & Wright, M. (2008). Ready to Innovate: Are Educators and Executives Aligned on the Creative Readiness of the US Workforce?. Conference Board.
11. Craft, A. (2001). An analysis of research and literature on creativity in education. *Qualifications and Curriculum Authority*, 1-37.
12. Chesky, K. S., & Hipple, J. (1997). Performance anxiety, alcohol-related problems, and social/emotional difficulties of college students. *Medical Problems of Performing Artists*, *12*(4), 126-132.
13. Koopman, C. (2005). Maakt muziek slim? In: J. Herfs, R. van der Lei, E. Riksen & M. Rutten (eds.) *Muziek leren: Handboek voor het basis- en speciaal onderwijs*, 19-35. Assen: Van Gorcum.
14. Elliott, D. J. (1991). Music as knowledge. *Journal of aesthetic education*, 21-40.
15. Pitts, S. (2000). Reasons to teach music: establishing a place in the contemporary curriculum. *British Journal of Music Education*, *17*(01), 32-42.
16. Leonhard, C., & House, R. W. (1972). *Foundations and principles of music education.* New York [etc.]: McGraw-Hill Book Company, Inc.
17. Alperson, P. (1991). What should one expect from a philosophy of music education?. *Journal of Aesthetic Education*, 215-242.